क्रान्तिकारी

प्रश्नोत्तरी

सन्तवाणी

मानवता में ही पूर्णता निहित है

त्याग

प्रेम

सेवा

मानव सेवा संघ

मानव सेवा संघ, वृन्दावन

क्रान्तिकारी प्रश्नोत्तरी

सन्तवाणी

[भाग-2]

मानव सेवा संघ
के प्रवर्तक सन्त प्रवर
ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी
श्री शरणानन्द जी महाराज
से साधकों द्वारा पूछे गये
प्रश्न एवं उनके उत्तर

मानव सेवा संघ प्रकाशन
वृन्दावन (मथुरा)

★ प्रकाशक :
मानव सेवा संघ
वृन्दावन (मथुरा)

© सर्वाधिकारी प्रकाशक

★ प्रथम संस्करण—फरवरी 2012

★ 5000 प्रतियाँ

★ मूल्य – 30/-

★ मुद्रक :
श्रुति मुद्रण
वमनपुरी, श्रीधाम वृन्दावन
9410093517

★ आमुख ★

मानव सेवा संघ की साहित्य-शृंखला का अद्यतन पुष्प 'प्रश्नोत्तरी भाग-2' सन्तवाणी के प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्रश्नोत्तरी का प्रथम संस्करण भाग-1 के रूप में दिव्य ज्योति पूज्या देवकी माताजी के समय में प्रकाशित हुआ था। तब से अब तक उक्त पुस्तक के पाँच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

मानव सेवा संघ के प्रणेता-प्रवर्तक सन्त ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी शरणानन्द जी महाराज संघ की स्थापना के आरम्भ काल में केवल प्रश्नोत्तर ही करते थे। उनकी प्रश्नोत्तर की शैली बेजोड़ थी। श्री महाराज जी का किसी श्रेणी के जिज्ञासु के प्रश्न का उत्तर देने का ढंग ऐसा निराला था कि प्रश्न बाद में पूरा होता, उत्तर पहले आ जाता था। और, उत्तर इतना सटीक होता था कि प्रश्नकर्ता अवाक् रह जाता। साथ ही उत्तर इतना समाधान कारक एवं अपने में परिपूर्णता लिए होता था कि उसमें कुछ और घटाने-बढ़ाने की गुंजाइश न रहती।

'प्रश्नोत्तरी' के प्रथम भाग को जिज्ञासुओं एवं प्रेमी साधकों ने बहुत पसन्द किया था। बहुत दिनों से अनेक साधकों की यह माँग चली आ रही थी कि इसका दूसरा भाग भी प्रकाशित किया जाए। प्रस्तुत पुस्तक संघ की वरिष्ठ साधिका एवं महामन्त्री साध्वी सुश्री अर्पिता जी द्वारा संकलित किया गया है। अनेक

सत्संग-यात्राओं में आप पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज के साथ रही हैं। उस यात्रा काल में तत्त्व-जिज्ञासुओं एवं प्रेमी-भक्तों द्वारा जो-जो प्रश्न श्री स्वामी जी महाराज से किए जाते थे एवं जो-जो उत्तर श्री स्वामी जी महाराज देते, वे सब आप एक डायरी में नोट करती जाती थीं। उनको सम्पादित कर (उनमें से व्यक्तिगत प्रश्न निकालकर) यह पुस्तक तैयार की गई है।

आशा है प्रेमी पाठकों एवं जिज्ञासुओं को जीवन के अनेक अनछुए पहलुओं पर नया प्रकाश मिलेगा।

इसी शुभ भावना के साथ!

वृन्दावन — सर्वहितैषी

महाशिवरात्रि-फरवरी-2012 — **स्वामी अद्वैत चैतन्य**

प्रार्थना

(प्रार्थना आस्तिक प्राणी का जीवन है तथा साधक के विकास का अचूक उपाय है।)

मेरे नाथ! आप अपनी, सुधामयी, सर्व-समर्थ, पतितपावनी, अहैतुकी कृपा से, दुखी प्राणियों के हृदय में त्याग का बल, एवम् सुखी प्राणियों के हृदय में, सेवा का बल प्रदान करें, जिससे वे सुख-दु:ख के बन्धन से मुक्त हो, आपके पवित्र प्रेम का आस्वादन कर कृतकृत्य हो जायँ।

ॐ आनन्द ! ॐ आनन्द !! ॐ आनन्द !!!

प्रश्नोत्तरी

प्रश्न- संसार में कैसे व्यक्तियों से सबसे ज्यादा क्षति होती है?

स्वामीजी- संसार के चार अंग हैं- (1) संसार (2) समाज (3) परिवार (4) स्वयं ।

जिसके हृदय में सद्भाव नहीं है, शान्ति-मुक्ति नहीं है उसके द्वारा संसार की बड़ी क्षति होती है।

शान्ति-मुक्ति नहीं होगी तो फिर आसक्ति व पराधीनता होगी। उससे पृथ्वी भी भार से दबने लगती है। सबके प्रति सद्भाव रखना, शान्त रहना, स्वाधीन रहना और प्रेम से भरपूर होने से संसार की बड़ी सेवा होती है। जहाँ शान्त पुरुष रहते हैं वहाँ की भूमि में विलक्षणता आ जाती है। पेड़-पौधे हर्षित होते हैं। कैसे होगा? (1) इस सृष्टि में मेरा कुछ नहीं है (2) मुझ पर सभी का अधिकार है (3) मेरा किसी पर नहीं है। (4) अचाह होना (5) सभी के प्रति सद्भाव।

प्रश्न- परमात्मा दिखाई नहीं देता, कैसे मानें ?

स्वामीजी- बिना देखा सदैव बिना देखा नहीं रहता। अपना दायित्व पूरा करो। परमात्मा तो अपना करना करते ही हैं।

प्रश्न- शारीरिक कष्ट को कैसे भूला जाय ?

स्वामीजी- भूला न जाय, सहा जाय (चिन्ता-विलाप से रहित होकर)! यह तप है। इससे शक्ति बढ़ती है। भूलने से तो जड़ता आयेगी। उससे असंग होने की कोशिश करो। तितिक्षा रखो। हर्षपूर्वक कष्ट को सहन करो!

प्रश्न- गुफा में रहने वाला क्या सच्चा साधू होता है ?

स्वामीजी- गुफा में मच्छर-मक्खी भी रहते हैं। क्या वे साधू हो जायेंगे?

प्रश्न- शिव मूर्ति की जगह शिवलिंग की पूजा क्यों होती है?

स्वामीजी- लिंग की नहीं, शिव की पूजा की जाती है। जिसकी स्वयं की कोई आकृति नहीं होती, उसमें प्रतीक की स्थापना की जाती है। "मैं" भी एक लिंग है- अपने में ही स्थापना कर लो।

प्रश्न- आपने भगवान को पसन्द किया है?

स्वामीजी- हाँ! हमने किया है पसन्द।

प्रश्न- आपको भगवान मिल गये?

स्वामीजी- हाँ, हमें मिल गये; वरना कहलवादो भगवान से कि नहीं मिले।

प्रश्न- हमें पसन्द करा दीजिये।

स्वामीजी- भगवान ने हमें बताने की ड्यूटी दी है, पसन्द कराने की नहीं। कह दो भगवान से कि ड्यूटी दे दो, मैं सभी को पसन्द करा दूँ।

प्रश्न- ज्ञान किसको होता है?

स्वामीजी- ज्ञान उसे होता है जिसे सन्देह की वेदना होती है, जिसमें सत्य की जिज्ञासा होती है।

प्रश्न- अत्याचारी का मन, पापी का मन कैसे बदला जाय?

स्वामीजी- भलाई करने व भला चाहने से।

प्रश्न- शरीर के रहते पराधीनता मिट सकती है?

स्वामीजी- हाँ! मिट सकती है। शरीर के रहते शरीर-धर्म रहेगा। पराधीनता अपना मानने से होती है। इससे सुख भोगते हैं, यही पराधीनता है। शरीर तो किसी विधान से मिला है, उसी विधान से चला जायेगा। लेकिन हमारा तो शरीर से न नित्य सम्बन्ध है, न जातीय सम्बन्ध है। फिर हम क्यों जीने के लालच और मरने के भय में आबद्ध हैं?

प्रश्न- दायित्व क्या है?

स्वामीजी- 1- बल का दुरुपयोग नहीं करूँगा।

2- विवेक का अनादर नहीं करूँगा।

3- आस्था में विकल्प नहीं करूँगा।

प्रश्न- चित्तवृत्ति एकाग्र कैसे हो?

स्वामीजी- मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, मेरा संसार पर कोई अधिकार नहीं है—इसे अनुभव करने से।

प्रश्न- आसक्ति कैसे मिटे?

स्वामीजी- तुम्हारे पास जो कुछ है हमें दे जाओ! आसक्ति रह जाय तो Challange है। संग्रही में आसक्ति रहती है।

प्रश्न- जन्म क्यों होता है?

स्वामीजी- बुराई और भलाई का फल भोगने के लिए होता है। बुराई करना नहीं है, भलाई का अभिमान और फल नहीं चाहिए। तो अगला जन्म नहीं होगा।

प्रश्न- धर्म साधन में नींद आती है तो क्या करें?

स्वामीजी- सो जाओ, डरो मत! अगर भजन करते-करते सो जाओगे तो कारण शरीर में उसका प्रभाव होगा और दृढ़ता आयेगी।

प्रश्न- संसार से उपरामता कैसे हो?

स्वामीजी- संसार की सेवा करने से एवं उसमें दु:ख का दर्शन करने से!

प्रश्न- स्वामी जी ब्रह्म का बोध किसे होता है?

स्वामीजी- अरे यार! ब्रह्म का बोध ब्रह्म को होता है।

प्रश्न- सम्मान बहुत अच्छा लगता है क्या करें?

स्वामीजी- सम्मान इतना भयंकर विष है कि विष खाने से तो एक बार इन्सान मरता है। पर सम्मान के भोग से जन्म-जन्मान्तर तक मरता है।

प्रश्न- क्या पूजा करना जरूरी है?

स्वामीजी- क्या तुम पूजा नहीं करते?

जिज्ञासु- नहीं करता हूँ।

स्वामीजी- क्यों झूठ बोलते हो? बताओ यार। स्त्री का पत्र नहीं आता तो चिन्तन होता है कि नहीं? चाय नहीं मिले तो चिन्तन होता है कि नहीं? यार, पूजा तो तुम करते हो। परमात्मा की पूजा भी तो यही है। पूजा का मतलब क्या है? किसी की याद आना। सेवा करोगे, पूजा होगी।

प्रश्न- संकल्पों का त्याग कैसे हो?

स्वामीजी- क्या सभी संकल्प किसी के पूरे हुए हैं? नहीं। सिद्ध हुआ कि संकल्प-पूर्ति जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। ऐसा भी नहीं है कि कोई संकल्प पूरा न हुआ हो। तो सिद्ध हुआ कि संकल्प पूर्ति-अपूर्ति जीवन नहीं है, साधन सामग्री है। यह बात मानने से ही संकल्प पूर्ति का महत्व जीवन में नहीं रहेगा। इस प्रकार निःसंकल्पता आ आयेगी।

प्रश्न- विवेक का आदर क्यों नहीं कर पाते?

स्वामीजी- हम अपने साध्य को भूल जाते हैं और सुख, सुविधा व सम्मान में खो जाते हैं।

प्रश्न- रोग का सदुपयोग क्या है?

स्वामीजी- दुःख का प्रभाव होना चाहिए। रोग देह की वास्तविकता का अनुभव करा देता है। शरीर से व्यक्ति को असंग करने में रोग सहायता देता है।

प्रश्न- रोग का निदान या दवा क्या है?

स्वामीजी- शरीर के राग से निवृत्त होना ही साधक का लक्ष्य होना चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्य का यथा-शक्ति ध्यान रखकर शरीर की सेवा करनी चाहिए-ऐसा करने से शरीर के रोग का अन्त हो जाता है। शरीर सेवा-सामग्री है। साधक की प्रार्थना होनी चाहिए-"हे प्रभु! यह शरीर विश्व के काम आ जाए, अहम् अभिमान-शून्य हो जाए एवं हृदय प्रेम से भर जाए।"

प्रश्न- सच्चा सुख मनुष्य को कब और कैसे मिल सकता है?

स्वामीजी- वास्तव में मानव-जीवन की यही सबसे बड़ी समस्या है। इसके हल करने में प्राणी सदा स्वतन्त्र है। इस प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार न करना बड़ी भारी भूल है।

मानवता प्राप्त होने पर मनुष्य को वह सुख मिल जाता है जिसमें दु:ख नहीं होता अर्थात् सच्चा सुख मिल जाता है।

सहज भाव से मूक भाषा में प्रेम पात्र से प्रार्थना करो-"हे नाथ! इस हृदय को अपनी प्रीति से भर दो। इस शरीर को दुखियों की सेवा में लगा दो। बुद्धि को विवेकवती बना दो। इस जगत् रूपी वाटिका में मुझे एक सुन्दर पुष्प बना दो। मैं सदा आपकी कृपा की प्रतीक्षा में रहूँ।" ऐसी प्रार्थना करने से प्रेम-पात्र तुम्हें अपनी सेवा करने के योग्य अवश्य बना लेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रश्न- शारीरिक कष्टों को कैसे भूला जाय?

स्वामीजी- भूला न जाय, सहा जाय-चिंता, विलाप से रहित होकर। यह तप है। तप से शक्ति बढ़ती है। भूलने से तो जड़ता आवेगी। शरीर से तितिक्षा होनी चाहिए। तितिक्षा का अर्थ है, हर्षपूर्वक कष्ट को सहन करना।

प्रश्न- मानव-सेवा-संघ की पहली प्रार्थना में यह कहा जाता है कि दुखियों के हृदय में त्याग का बल प्रदान करें। दुखी बेचारा क्या त्याग करेगा?

स्वामीजी- जब मनुष्य कुछ चाहता है और उसका चाहा हुआ नहीं होता है, तो वह दु:ख का अनुभव करता है। इससे सिद्ध हुआ कि दु:ख का कारण 'चाह' है। अत: अगर दुखी दु:ख से छुट्टी पाना चाहता है, तो उसे चाह का त्याग कर देना चाहिए। चाह का त्याग करने में मानव-मात्र स्वाधीन है।

प्रश्न- आसक्ति-रहित होकर कार्य करने से क्या तात्पर्य है?

स्वामीजी- जिस कार्य को करने में अपना सुख निहित नहीं होता, जो सर्वहितकारी दृष्टि से किया जाता है, वह आसक्ति-रहित कार्य कहलाता है।

प्रश्न- दुखी होना और करुणित होना एक बात है क्या?

स्वामीजी- नहीं, दु:ख में जड़ता आती है। करुणा में चेतना आती है, संसार से सम्बन्ध टूटता है।

प्रश्न- शारीरिक रोग आने पर दु:ख क्यों होता है?

स्वामीजी- 'मैं शरीर हूँ' या 'शरीर मेरा है'- ऐसा समझने से दु:ख होता है।

प्रश्न- रोगी को दु:ख न सताये, इसके लिए क्या करना चाहिए?

स्वामीजी- रोग प्राकृतिक तप है, ऐसा मान कर उसे हर्षपूर्वक सहन कर लेना चाहिए।

प्रश्न- रोगी व्यक्ति को रोगावस्था में क्या करना चाहिए?

स्वामीजी- प्रत्येक अवस्था में प्रभु की अहैतुकी कृपा का अनुभव होता रहे और हृदय उनकी प्रीति से भरा रहे। शरीर के रहने, न

रहने से साधकों को कोई लाभ-हानि नहीं होती। शरीर को बनाये रखने की कामना का त्याग आवश्यक है।

प्रश्न- भगवत्प्राप्ति में विघ्न क्या है?

स्वामीजी- संसार को पसन्द करना ही सबसे बड़ा विघ्न है।

प्रश्न- दु:ख क्यों होता है?

स्वामीजी- सुख-भोग से ही दु:ख-रूप वृक्ष उत्पन्न होता है। ऐसा कोई भी दु:ख नहीं है जिसका जन्म सुख-भोग से न हुआ हो।

प्रश्न- दु:ख और सुख का परिणाम क्या है?

स्वामीजी- जो सुख किसी का दु:ख बनकर मिलता है, वह मिटकर कभी-न-कभी बहुत बड़ा दु:ख हो जाता है और जो दु:ख किसी का सुख बनकर मिलता है, वह मिटकर कभी-न-कभी आनन्द प्रदान करता है। प्राणी सुख से बँधता और दु:ख से छूट जाता है। सुख से दु:ख और दु:ख से आनन्द मिलता है।

प्रश्न- त्याग क्या है?

स्वामीजी- संसार की अनुकूलता व प्रतिकूलता पर विश्वास का अत्यन्त अभाव ही सच्चा त्याग है। क्योंकि अनुकूलता से राग और प्रतिकूलता से द्वेष का जन्म होता है। राग-द्वेष का अभाव हो जाना ही त्याग है। जिस प्रकार लड़की पिता के घर कन्या, ससुराल में बहू और पुत्रवती होने पर माता कहलाती है, उसी प्रकार त्याग ही प्रेम और प्रेम ही ज्ञान कहलाता है। त्याग होने पर आस्तिकता आ जाती है, तब त्याग प्रेम में बदल जाता है। आस्तिकता का यथार्थ अनुभव होने पर प्रेम ही ज्ञान में बदल जाता है।

प्रश्न- कर्म से स्थाई प्रसन्नता क्यों नहीं मिलती है?

स्वामीजी- कर्म, शरीर व संसार-इन तीनों का स्वरूप एक ही

है। इनकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। जिसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है उससे स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। स्वतन्त्रता के बिना प्रसन्नता कहाँ? अतः कर्मादि से प्रसन्नता नहीं मिल सकती।

प्रश्न- कर्म किस प्रकार करना चाहिए?

स्वामीजी- कर्म विश्व-प्रेम के भाव से करना चाहिए। ऐसा करने से भोगों का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। भोगों का यथार्थ ज्ञान होने पर त्याग अपने आप होता है। फिर कर्म करने में रुचि नहीं रहती। करने के राग की निवृत्ति हो जाती है और योग प्राप्त होता है।

प्रश्न- मनुष्य को शान्ति क्यों नहीं मिलती?

स्वामीजी- कामना पूरी करने के लिए कर्म करने से शान्ति नहीं मिलती। साधक यदि चित्त-शुद्धि का प्रयत्न करे, निष्काम होकर काम करे तो शान्ति अपने आप आ जाती है।

प्रश्न- भगवान् हमसे प्रेम करते हैं, यह कैसे मालुम हो?

स्वामीजी- भगवान् पर विश्वास हो और उनसे हमारा सम्बन्ध हो, तब मालुम हो सकता है। जैसे माता अपने बच्चे के लिए तरसती है, वैसे ही भगवान् अपने भक्त के लिए तरसते हैं। बच्चा काला-कलूटा, गूँगा-बहरा, लूला-लँगड़ा कैसा भी हो, माता उससे प्रेम करती है। बच्चा भी यह बात समझता है। भगवान् में तो माता से अनेक गुना वात्सल्य है। फिर वे भक्त से प्रेम करें, इसमें कहना ही क्या? अतः जो एकमात्र भगवान् को ही मानते हैं, उनको भगवान् का प्रेम मिलता है। इसमें सन्देह नहीं है। यह भक्तों का अनुभव है। ईश्वर प्रेमी-भक्त को ढूँढ़ता है। विचारशील साधक ईश्वर को ढूँढ़ता है।

प्रश्न- स्वामीजी! ज्ञान किसे कहते हैं?

स्वामीजी- जिसके द्वारा तुम जानते हो; जो जानते हो सो ज्ञान

नहीं है। विज्ञान का अर्थ है—प्रकृति की जो शक्तियाँ हैं उनका क्या-क्या उपयोग है, क्या-क्या उनमें चमत्कार है? विज्ञान कर्म के क्षेत्र की चीज है, जैसे- जीवन विज्ञान, भौतिक विज्ञान इत्यादि। वैसे विज्ञान का अर्थ विशेष ज्ञान भी है। स्थान भेद से अर्थ अलग-अलग हो जाता है।

प्रश्न- भौतिक विज्ञान, अध्यात्म विज्ञान और आस्तिक विज्ञान क्या है?

स्वामीजी- (1) बुराई रहित होना जीवन का विज्ञान है।

(2) बल का दुरुपयोग मत करो, विकास होता जायेगा-यह भौतिक विज्ञान है।

(3) ज्ञान का अनादर मत करो, आपको जीवन-मुक्ति प्राप्ति होगी। यह आध्यात्मिक विज्ञान है।

(4) आस्था में विकल्प मत करो, भगवत्-तत्व आपको प्राप्त होगा। यह आस्तिक विज्ञान है।

ये तीनों तत्व आपमें मौजूद हैं-

(1) भौतिक-विज्ञान हमें बुराई रहित होने की प्रेरणा देता है।

(2) अध्यात्म-विज्ञान हमें स्वाधीन होने की प्रेरणा देता है।

(3) आस्तिक-विज्ञान हमें प्रेमी होने की प्रेरणा देता है।

तीनों विज्ञान लगा लो। बुराई रहित हो, स्वाधीन हो और प्रेमी हो, यही जीवन है।

प्रश्न- भौतिकवाद, अध्यात्मवाद और आस्तिकवाद क्या है?

स्वामीजी- आपका और परमात्मा का सम्बन्ध प्रेम के लिये है। आपका और संसार का सम्बन्ध सेवा के लिये है। अगर आपने सेवा नहीं की और संसार से सम्बन्ध रखा तो अनेक आपत्तियाँ आएंगी जीवन में।

ऐसे ही परमात्मा को माना और प्रेमी नहीं हुये, तो कोई लाभ नहीं होगा। इसलिये स्वाधीन होना जरूरी है। सेवा तुम स्वाधीन होकर ही कर सकते हो तथा प्रेमी तुम स्वाधीन होकर ही हो सकते हो। इसी को कहते हैं अध्यात्मवाद, जो स्वाधीन बनाता है। निर्भय होकर, निष्काम होकर, असंग होकर आप स्वाधीन होते हो।

मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, मेरा संसार से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन सब बातों से ही आप स्वाधीन होते हैं। प्रभु अपने हैं तो प्रेमी होते हैं। जीवन में बुराई का कोई स्थान नहीं है तो धर्मात्मा होते हैं। भौतिकवाद कहो चाहे धर्मात्मा होना कहो, अध्यात्मवाद कहो चाहे स्वाधीन होना कहो, ईश्वरवाद कहो चाहे प्रेमी होना कहो—एक ही बात है। यही जीवन का चित्र है।

प्रश्न- बुराई रहित जीवन कैसे प्राप्त हो?

स्वामीजी- बुराई रहित जीवन की आवश्यकता अनुभव करो। बुराई जनित सुख का भोग मत करो, नहीं तो परिणाम में दुःख भोगना पड़ेगा। जरूरत महसूस करो- बुराई रहित, स्वाधीन और प्रेमी होने की। यही मानव का अपना जीवन है। प्रभु का और जगत का-दोनों का यह संकल्प है कि मानव में तीन बातें हों। जगत भी यही चाहता है कि आप बुराई रहित हों, प्रभु भी यही चाहतें हैं कि आप बराई रहित हों। आप भी पसन्द कीजिये कि मैं बुराई रहित होना चाहता हूँ। जब व्यक्ति जरूरत अनुभव करता है तब बेचैन रहता है- मैं बुराई रहित होना चाहता हूँ, मैं स्वाधीन होना चाहता हूँ मैं प्रेमी होना चाहता हूँ। इतना अनुभव करने की जिम्मेदारी आपकी है, शेष प्रभु पर है।

प्रश्न- अपनी वर्तमान स्थिति समझने के लिये कोई परिश्रम-परीक्षण करना होगा क्या?

स्वामीजी- अपनी दशा को देखना होगा। हर आदमी अपनी ज़रूरत को नहीं जानता क्या? देखना है-

(1) जरूरत का ज्ञान (2) वर्तमान में क्या कठिनाई है? क्या कष्ट है? यानी किसी अभाव से पीड़ित होकर ही न आप प्रयत्न करेंगे! आप किस अभाव का अनुभव कर रहे हैं जीवन में, ऐसा महसूस करें। यदि कोई अभाव नहीं है तब तो कोई समस्या ही नहीं बनेगी, भाई! जितनी समस्यायें बनती हैं वे अपने अभाव के अनुभव से ही बनती हैं। जैसे कोई पराधीनता से पीड़ित है, वह क्या सोचेगा? मुझे स्वाधीनता मिल जाय। जैसे कोई मृत्यु के भय से पीड़ित है क्या सोचेगा? मुझे अमर जीवन मिल जाय। जैसे कोई नीरसता से पीड़ित है क्या सोचेगा? मुझे नित-नव-रस मिल जाय।

प्रश्न- परमात्मा को हम अपना क्यों नहीं मान पाते?

स्वामीजी- इसलिये नहीं मान पाते कि हमने जरूरत महसूस नहीं की। कारण का कारण नहीं होता। देखिये! आपके सामने एक तरफ जगत है और एक तरफ परमात्मा। तीसरी चीज तो है नहीं। आप और आपका जगत, आप और आपका परमात्मा। अगर जगत पसन्द है तो परमात्मा कैसे पसन्द आ जायेगा? परमात्मा को पसन्द कैसे कर पायेंगे?

प्रश्न- जगत में ऐसी क्या विशेषता है जो पसन्द आ जाता है?

स्वामीजी- जगत की विशेषता नहीं है आपकी निर्बलता है।

प्रश्न- निर्बलता कैसे दूर हो?

स्वामीजी- अपने आप दूर हो जायेगी। जगत पसन्द करोगे, मिलेगा है नहीं- धक्के खाओगे, अपने आप ही परमात्मा की ओर जाओगे। भाई! सीधी सी बात है, अगर हम जगत को पसन्द करेंगे तो वह मिलने वाला है नहीं!

जगत माने - जो न मिले। परमात्मा माने - जो मिल जाय।

तो, अगर आप जगत को पसन्द करोगे तो मिलेगा नहीं। नहीं मिलेगा तो धक्का खाकर अपने आप परमात्मा की ओर आओगे। देखिये, इसका कोई तरीका नहीं है। इसका कोई टेक्नीक नहीं है जो आपको बता दी जाय, जिससे आपका जगत छूट जाय और परमात्मा पसन्द आ जाय। जिन लोगों ने टैकनीक बताई वे कामयाब हुये नहीं। क्या आपने नहीं सुना - लोगों ने कहा कि भगवान का नाम लेते रहो - सब काम हो जायेगा। पर क्या बतायें- हमसे साधकों ने यहाँ तक कहा कि हमने इतने करोड़ नाम लिये- पर हमारा काम नहीं बना। लेकिन इन बातों को हम कहें क्यों! ऐसा भी सुना कि एक बार नाम लिया और काम बन गया।

प्रश्न- परमात्मा के मिलने का सुगम उपाय बताएं?

स्वामीजी- परमात्मा ने ऐसा सुगम उपाय अपनी प्राप्ति के लिये रखा है लोगों के सामने कि भाई! अगर तुम कुछ भी नहीं कर सकते हो तो भी मुझसे मिल जाओगे। अगर तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है तब भी मुझसे मिल सकते हो, लेकिन साथ-साथ कुछ चाहो मत, यही शर्त है। अगर हम कुछ नहीं कर सकते हैं और कुछ न चाहें, तो न करने में क्या आपत्ति है? हमसे यह तो होता नहीं कि हम कुछ न चाहें, तब मालूम होता है भाई! जीवन बड़ा कठिन हो गया। लोग निराश हो जाते हैं, थक जाते हैं, विवश हो जाते हैं। यह निराशा हमारी भूल से आती है जीवन में। अगर सचमुच हमको परमात्मा ही पसन्द हैं, तब तो परमात्मा के मिलने में कोई बाधा है ही नहीं।

मनुष्य अगर अपनी जरूरत को सामने रखकर परस्पर चर्चा करे, विचार विनिमय करे तो उसे राह मिलती है, जरूर मिलती है।

लेकिन हम तो हैं कहीं, सोचते हैं कुछ, पूछते हैं कुछ तो कैसे राह मिले? विचार कीजिये, क्या आप भगवत् प्राप्ति से भिन्न और कोई संकल्प रखते हैं? अगर और कोई संकल्प रखते हैं तब तो भगवत् प्राप्ति लम्बी हो जायेगी। बहुत लम्बा रास्ता हो जायेगा। क्योंकि जब तक वह संकल्प पूरा हो या बिना पूरा हुए बना रहे तब तक आपको फुर्सत कहाँ होगी भगवान से मिलने की! भगवान की ओर से इन्कार नहीं है आपसे मिलने के लिये। पर आपको ही फुर्सत नहीं है भगवान से मिलने के लिये। हमने मानव सेवा संघ के सत्संग में अनुभव करके देखा है कि सत्संग में जो लोग आते हैं- उनके खाने-पीने का इन्तजाम करते हैं - वे अनेक संकल्प से आते हैं - सत्संग का फायदा कैसे हो? आदि, आदि। इसलिये अपना एक संकल्प देखो कि क्या है? ऐसा कौन सा संकल्प है जो आपको निर्विकल्प नहीं होने देता? पहले तो आपको निर्विकल्प होना पड़ेगा! अर्थात् परमात्मा से मिलने के लिये अकेले होना पड़ेगा न! ऐसा कह लो। तो कौन सा संकल्प है जो आपको अकेला नहीं होने देता। उन संकल्पों को चाहे पूरा करके, चाहे बिना पूरे किए समाप्त करो। भगवान से मिलने के लिये आपको निर्विकल्प होना ही पड़ेगा।

प्रश्न- मुक्ति कैसे मिले?

स्वामीजी- संसार की नापसन्दगी से। अचाह होना, निर्मम होना, असंग होना। मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, मेरा किसी पर कोई अधिकार नहीं है। मुक्त होने में, प्रभु प्रेम पाने में, शांति पाने में, निर्विकारिता पाने में कोई पराधीन नहीं है। आवश्यकता अनुभव करो, पसन्द करो। बाकी सब कामों में पराधीनता है। रोटी खाने में सब पराधीन। कपड़े पहनने में सब पराधीन। मकान बनाने में, सम्पत्ति जोड़ने

में सभी पराधीन हैं, कोई स्वाधीन नहीं है। पर शान्ति, मुक्ति, भक्ति पाने में सब स्वाधीन हैं।

प्रश्न- महाराज जी! व्यवहार में न चाहते हुये भी कभी-कभी अपनी या जिसके साथ व्यवहार कर रहे हैं उसकी गलती से, भूल से मन में विक्षेप हो जाता है। क्या करना चाहिये?

स्वामीजी- सजग रहो, धीरज रखो। संसार में थोड़े ही दिन तो रहना है। अपना आत्म-निरीक्षण करो। भूल ज्ञात होने पर न दुहराने का व्रत लो। अपने को दोषी मत मानते रहो। कोई दूसरा भी गलती करता है तो भी शान्त रहना चाहिये। अपना कर्त्तव्य देखो। बुराई के बदले में भलाई करना चाहिये। कोई चोरी करने आता है तो उसे आप पकड़ लेते हैं। अब आपका कर्त्तव्य है, आप उसे पुलिस के हवाले कर दें। दण्ड देना आपका कर्त्तव्य नहीं है। इसी तरह आपके प्रति कोई गलत कार्य करता है तो या तो आप न्यायालय में जाइये (जैसी परिस्थिति हो) या शान्त हो जाइये। व्यक्तिगत रूप में शान्त हो जाइये। जिसने आपके प्रति गलत कार्य किया है उसे स्वत: दण्ड मिल जायेगा। जैसा दायित्व है उसी अनुसार व्यवहार निभाइये। अपने कल्याण के साथ-साथ सुन्दर समाज का निर्माण भी अभीष्ट होना चाहिये। बुराई देखते रहने से भी समाज में बुराई फैलती है। अत: निर्मल समाज के लिये दायित्व पूरा करना ही होगा। कर्त्तव्य पालन से ही विक्षेप का अन्त होगा।

प्रश्न- स्वामीजी! शहरी जीवन बड़ा अशान्त है, स्वर्गाश्रम (ऋषिकेश) शान्त है।

स्वामीजी- नहीं! नहीं! ऐसी बात नहीं है। शहरी जीवन भी शान्त हो सकता है। अपनी रुचि शान्ति की होनी चाहिये। एक खेत है।

उसमें आप गन्ना बोते हो तो मिट्टी, पानी सब वही होते हुये उस मिट्टी में से आप मिठास खींचेंगे। यदि उसी मिट्टी में मिर्चें बोई जायें तो उसी मिट्टी से आप चरपरापन खींचेंगे। इसी प्रकार आपकी जरूरत यदि शान्त रस की है तो आपको शहरी जीवन में भी शान्ति मिल सकती है। ऐसी मेरी मान्यता है।

प्रश्न- महाराज! हम जड़ता की तरफ आकर्षित क्यों हुये?

स्वामीजी- जड़ बनकर जड़ता की तरफ आकर्षित हुये। शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रिय, यह सब जड़ है। इनको अपना मानना ही तो जड़ता है। इनको अपना क्यों मानते हो? क्या शरीर को आपने बनाया है? क्या आपके चाहने से रहता है? यदि आप अपने को जड़ नहीं बनायें तो आप जड़ता की तरफ आकर्षित नहीं होंगे। परमात्मा को अपना मानो, बुराई रहित हो जाओ तो धर्मात्मा हो जाओगे। अहंकार अपना मानने से होता है। बेईमानी से होता है। संसार की जितनी भी वस्तुयें, पदार्थ हैं वे सबके हैं, अपने नहीं हैं। अपना मानने से बेईमानी होती है। संसार की वस्तु संसार की सेवा में भेंट कर दो। आकर्षण गया। अपना अपने में है तो भी आकर्षण नहीं रहेगा।

प्रश्न- महाराज जी! सहनशीलता नहीं है। कोई डाँटता है तो हलचल हो जाती है, चित्त अशान्त हो जाता है। क्या करें?

स्वामीजी- पहली बात तो यह है कि आप शरीर से तद्रूप रहते हैं तो ऐसा होता है। दूसरा यह सोचो कि कोई डाँटता क्यों है? इस पर विचार नहीं करते। यदि वह हमारी किसी भूल पर डाँटता है तब तो अच्छा ही है। उस भूल को निकाल देना चाहिये। फिर वैसी गलती नहीं करना चाहिये। यदि कोई बिना गलती डाँटता है तो भी हलचल होने की कोई बात नहीं। यदि करोड़पति को कोई कंगाल कह दें तो उसे क्या फर्क

पड़ जायेगा। वह तो उसकी बात पर हँसेगा ही। कोई असर नहीं होगा। इसलिये आप अपनी गलती सुधार लीजिये, हलचल नहीं होगी। अभी आप डाँटने योग्य हैं इसलिये डाँट पड़ती है। हलचल होती है। निष्काम होकर काम करें हलचल नहीं होगी।

प्रश्न- 'काम करने में सावधान, होने में प्रसन्न'—इसका आशय क्या है?

स्वामीजी- करने में सावधान का मतलब है जो कुछ भी आप करो उसे विधिवत् करो और उससे जो फल मिले उसमें प्रसन्नता अनुभव करो।

प्रश्न- शिक्षा और दीक्षा में क्या अन्तर है?

स्वामीजी- शिक्षा ज्ञान को बढ़ाती है, सौन्दर्य को बढ़ाती है और दीक्षा से लक्ष्य का निर्णय होता है।

प्रश्न- सत्संग क्या है और विश्राम कैसे मिले?

स्वामीजी- सत्य को स्वीकार करना ही सत्संग है। संसार में मानव का अपना कुछ भी नहीं, केवल कर्तव्य उसका है—यह मानकर जो चलता है वह शान्ति पाता है और कर्तव्य फल छोड़ दे तो स्वाधीन बन सकता है। उदार होकर प्रभु में आत्मीयता पैदा करे तो प्रेमी हो सकता है। कर्तव्य को समझे और अधिकार रहित होकर काम करे तो क्रोध का नाश हो जाता है। संसार के परे भी जीवन है, उस जीवन में पूरी-पूरी आस्था हो जाय तो इससे प्रभु-प्राप्ति का रास्ता खुल जाता है। साधना स्वयं उदित हो जाती है। कर्तव्य किये जाना चाहिए।

काम करने के बाद जब हम विश्राम करते हैं, वह भी एक जरूरी काम है। यह भी जीवन के लिए उतना ही जरूरी है, जितने बाकी काम। मनुष्य का असली जीवन योग, बोध और प्रेम को प्राप्त करना है।

परिस्थिति के अनुसार सही कार्य करने से विश्राम मिल जाता है। विश्राम सम्पादित करना चाहिए।

प्रश्न- हमारा दायित्व क्या है?

स्वामीजी- अपने को संसार से कुछ नहीं चाहिए, यही संसार के प्रति अपना दायित्व है। दायित्व पूरा करने से बन्धन टूटता है। यद्यपि मोह का नाश ज्ञान से होता है, तथापि दायित्व पूरा करने से भी मोह का नाश होता है।

प्रश्न- इन्द्रिय-दृष्टि और बुद्धि की दृष्टि में क्या अन्तर है?

स्वामीजी- बुद्धि-दृष्टि के प्रभाव को अपना लो, तो काम नाश हो जायगा और इन्द्रिय-दृष्टि से संसार का काम पूरा हो जायगा।

प्रश्न- कौन-सा धर्म सबसे अच्छा है?

स्वामीजी- जिस धर्म को मनुष्य मानता है वही धर्म सबसे अच्छा है।

प्रश्न- भाग्य और पुरुषार्थ में क्या भेद है?

स्वामीजी- हमें जो वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदि प्राप्त हैं वह किसी विधान से प्राप्त है। उसे आप भाग्य कह सकते हैं। पुरुषार्थ है मिले हुए का बढ़िया-से-बढ़िया सदुपयोग!

प्रश्न- सुख-दुख का सदुपयोग क्या है?

स्वामीजी- सुख-दु:ख के सदुपयोग से जीवन मिलता है। सुख का सदुपयोग है सेवा। मानव-सेवा-संघ की प्रणाली के अनुसार सुख-दु:ख मात्र साधन-सामग्री है, जीवन नहीं है। इस दृष्टि से विचार किया जाय तो जीवन सुख-दु:ख से अतीत है। भोग से मनुष्य के जीवन में जड़ता आती है, पराधीनता आती है। भोगी स्वाधीन नहीं हो सकता, प्रेमी नहीं हो सकता। और, जो परिस्थिति है, उसका सदुपयोग करने से उदारता आती

है, क्लेश मिटता है और चिर शान्ति प्राप्त होती है। जो परिस्थितियाँ हमें मिली हैं, जो सुख-दु:ख आया है उसका ठीक उपयोग करें तो हम अविनाशी जीवन से अभिन्न हो सकते हैं।

प्रश्न- जीवन क्या है?

स्वामीजी- जीवन शब्द का अर्थ है, जो अविनाशी हो, नष्ट न हो सकता हो, सदैव हो-वही जीवन है। जो चीज अपने में होती है, उसके लिए पराश्रय अपेक्षित नहीं होता है। अत: जीवन के लिए पराश्रय और परिश्रम अपेक्षित नहीं है। निर्मम और निष्काम होकर मनुष्य अपने में सन्तुष्ट हो जाय, तो उसे जीवन मिल जाता है।

प्रश्न- कर्तव्य-पालन करने से क्या लाभ है?

स्वामीजी- कर्तव्य-पालन करने से मनुष्य भयरहित हो जाता है, जिससे दु:खों की निवृत्ति हो जाती है। गरीबी सदा के लिए मिट जाती है और मनुष्य करने के राग से छूट जाता है।

प्रश्न- इन्द्रियजन्य ज्ञान में सद्भाव क्यों होता है?

स्वामीजी- विषयों का राग होने पर इन्द्रियजन्य ज्ञान में सद्भाव होता है। विषयों का राग मिटने पर अर्थात् विचारपूर्वक वैराग्य होने से बुद्धिजन्य ज्ञान का प्रभाव होता है।

प्रश्न- दु:ख क्यों होता है?

स्वामीजी- मनुष्य जब सुख का उपभोग करता है तो उसको दु:ख होता है। सुख का उपभोग करना छोड़ दो, दु:ख होगा ही नहीं।

प्रश्न- कर्म किस प्रकार करना चाहिए?

स्वामीजी- कर्म सर्वहितकारी भाव से करना चाहिए। हमारा प्रत्येक कर्म राग-रहित होने के लिए हो। सही करने की कसौटी है कि करने के अन्त में विश्राम प्राप्त हो।

प्रश्न- सुख और आनन्द में क्या अन्तर है?

स्वामीजी- सुख से दु:ख दब जाता है और आनन्द से मिट जाता है।

प्रश्न- चेतना क्या है?

स्वामीजी- चेतना सूर्य के समान है, जो स्वयं प्रकाशित है और जिससे जड़ प्रकाशित होते हैं।

प्रश्न- असत् क्या है?

स्वामीजी- जो हमेशा एक जैसा न रह पाये, वह असत् है।

प्रश्न- आनन्द क्या है?

स्वामीजी- जो होकर कभी न मिटे, जिसके मिलने के बाद और किसी चीज की इच्छा न रहे, वही आनन्द है।

प्रश्न- सब सन्देह दूर कब हो जाते हैं?

स्वामीजी- 'संसार' और 'मैं'—इन दोनों में-से किसी एक का यथार्थ ज्ञान हो जाय, तब सभी सन्देह दूर हो जाते हैं।

प्रश्न- प्रभु में पूर्ण आस्था कैसे हो?

स्वामीजी- प्रभु में आस्था पूर्ण तब होती है, जब उसकी तीव्र आवश्यकता हो, क्योंकि आस्था आवश्यकता के अधीन है।

प्रश्न- मन क्या है?

स्वामीजी- वासनाओं के समूह का नाम ही मन है। सभी वासनाओं का अन्त करने पर मन मिट जाता है और फिर काम, क्रोध, मोह आदि विकार शेष नहीं रहते।

प्रश्न- वासनाओं का त्याग कैसे हो?

स्वामीजी- वासनाओं का अन्त यथार्थ ज्ञान से होता है। ज्ञान हृदय के शुद्ध होने पर होता है। हृदय त्याग और प्रेम से शुद्ध होता है।

शरीरादि किसी वस्तु को अपना न समझना–त्याग और आनन्दघन भगवान् से किसी प्रकार की दूरी न रहना–प्रेम है।

प्रश्न– क्या मानव के विकास के लिए आध्यात्मिकता और नैतिकता दोनों आवश्यक हैं?

स्वामीजी– मानव आध्यात्मिक और नैतिक साधना का प्रतीक है। आध्यात्मिक साधना और नैतिक साधना एक ही जीवन के दो पहलू हैं। आध्यात्मिकता की उपेक्षा से नैतिक साधना निर्जीव हो जायगी और नैतिकता के बिना आध्यात्मिकता शून्य हो जायगी, जो मानव–स्वभाव को अभीष्ट नहीं है।

प्रश्न– आपका यन्त्रों के सम्बन्ध में क्या विचार है?

स्वामीजी– मैं सामान्यतः यन्त्रों के खिलाफ हूँ—क्योंकि यन्त्रों से विलास में वृद्धि होती है, संग्रह बढ़ता है, अभिमान आता है और बेकारी बढ़ती है।

प्रश्न– सुन्दर समाज के निर्माण की पद्धति क्या होगी?

स्वामीजी– कर्तव्य–परायणता के आधार पर ही सुन्दर समाज का निर्माण हो सकता है।

प्रश्न– समाज में क्रान्ति कैसे आएगी?

स्वामीजी– क्रान्ति व्यक्ति में आयेगी, क्रान्ति जीवन में आयेगी। क्रान्तिकारी व्यक्तियों से सुन्दर समाज बनेगा। हमें समाज में एकता के भाव को लाना चाहिए। अनेक भेद होने पर भी लक्ष्य की एकता और प्रीति की एकता लायी जा सकती है। व्यक्ति–व्यक्ति में क्रान्ति का प्रयास होना चाहिए। एक–एक क्रान्तिकारी व्यक्ति समाज में क्रान्ति की स्थिति लायेगा। इससे समाज क्रान्ति की ओर अग्रसर होगा।

प्रश्न- किसी आदमी को कर्तव्य-पालन में हानि होती हो तो वह उस हानि से कैसे बचे?

स्वामीजी- सच्ची बात यह है कि कर्तव्य-पालन से कभी किसी की हानि होती ही नहीं। हानि का अर्थ है मनुष्य-जीवन का संकीर्णता में, पराधीनता में बँध जाना, विकास में बाधक बन जाना। मनुष्य को उदार होना चाहिए, स्वाधीन होना चाहिए। संकीर्ण बन जाना, पराधीन हो जाना हानि है। किसी का पैसा चला जाय तो उसे हानि नहीं कहते और किसी को बेईमानी करने से लाभ हो जाय तो उसे लाभ नहीं कहते। कर्तव्य उसे नहीं कहते, जिसके पालन में व्यक्ति असमर्थ हो। सामर्थ्य-विरोधी काम कभी किसी साधक को करना ही नहीं है। प्राप्त सामर्थ्य और निजविवेक के अनुरूप कर्तव्य-पालन से व्यक्ति का विकास होता है।

प्रश्न- मनुष्य का सम्बन्ध संसार और परमात्मा के साथ कैसा हो?

स्वामीजी- मानव को जगत् के प्रति उदार और अपने प्रकाशक के प्रति प्रेमी होना चाहिए। जगत् मानव से उदारता की ही आशा रखता है और जो सभी का आधार तथा प्रकाशक है उसे मानव के हृदय का प्यार चाहिए। इस दृष्टि से मानव जगत् के लिए तथा सर्वाधार के लिए उपयोगी हो सकता है। यह विशेषता मानव को अपने निर्माता से प्राप्त है। अत: मानव को जगत के प्रति उदारता और अपने प्रकाशक तथा आधार के प्रति आत्मीयता रखनी चाहिए।

प्रश्न- दृश्य और दृष्टा का क्या सम्बन्ध है?

स्वामीजी- दृश्य की सीमा द्रष्टा के अन्तर्गत ही होती है। इस दृष्टि से समस्त दृश्य इन्द्रियों की सीमा के भीतर है और इन्द्रियाँ मन की

सीमा के भीतर हैं और मन बुद्धि की सीमा में है। बुद्धि तथा इन्द्रिय दृष्टि से ही जगत् की प्रतीति होती है। बुद्धि का ज्ञाता जो अहम् तत्त्व है, वह बुद्धि की सीमा से बड़ा है और अहम् का जो ज्ञाता अनन्त तत्त्व है वह अहम् से बड़ा है। अत: सर्व का ज्ञाता और प्रकाशक जो अनादि, अनन्त, अनुपम, अद्वितीय तत्त्व है उसके किसी अंश में अहम् और अहम् तत्त्व के किसी अंश में इदं तत्त्व है। अर्थात् 'है' के किसी अंश में 'मैं' और 'मैं' के किसी अंश में 'यह' सृष्टि है।

प्रश्न- शरीर के रहते हुए क्या मानव स्वाधीन हो सकता है?

स्वामीजी- शरीर मानव का स्वरूप नहीं है, अपितु साधन-सामग्री है। साधन-सामग्री का सदुपयोग करने में मानव सर्वदा स्वाधीन है। मिली हुई स्वाधीनता का दुरुपयोग करने पर मानव अपनी भूल से ही पराधीनता में आबद्ध होता है। मानव जन्मजात स्वाधीन ही है, यदि मिली हुई स्वाधीनता का दुरुपयोग न करे। जब मानव मिली हुई स्वाधीनता का दुरुपयोग नहीं करता तब वह स्वयं स्वाधीन होकर उदारता तथा प्रेम से परिपूर्ण हो जाता है और यही मानव का निज-स्वरूप है।

प्रश्न- विचार क्या है?

स्वामीजी- दृश्य का यथार्थ ज्ञान जिस चेतना से होता है, वह विचार है। विचार से अविचार की निवृत्ति होती है। फिर विचार स्वत: विचारक को लक्ष्य से अभिन्न कर देता है अर्थात् विचार से काम की निवृत्ति तथा जिज्ञासा की पूर्ति एवं प्रेम की प्राप्ति स्वत: हो जाती है।

प्रश्न- सामाजिक एकता के लिए भिन्नता में एकता से आपका क्या आशय है?

स्वामीजी- संसार में योग्यता, रुचि, सामर्थ्य आदि के भेद से अनेक प्रकार के भेद रहे हैं और रहेंगे। इन विविध प्रकार की अनेकताओं के होते हुए भी लक्ष्य की एकता हो सकती है। दूसरी एकता पारस्परिक प्रीति की एकता हो सकती है। ये दोनों प्रकार की एकताएं अनेक प्रकार की भिन्नताओं के बावजूद हो सकती हैं।

प्रश्न- सुन्दर समाज का जिक्र आपने बार-बार किया है—आपके विचार के अनुसार सुन्दर समाज कैसा होगा? उसका क्या रूप होगा?

स्वामीजी- (क) जिस समाज को पुलिस, फौज और न्यायशाला की अपेक्षा न हो।

(ख) जिसमें किसी के अधिकार का अपहरण न हो।

(ग) जिसमें एकता कर्तव्य-परायणता के आधार पर कायम हो, उसे सुन्दर समाज माना जायेगा।

प्रश्न- इस प्रकार के समाज के निर्माण का उपाय क्या होगा?

स्वामीजी- इसका उपाय है कर्तव्य-परायणता अर्थात् अपने अधिकार का त्याग और दूसरे के अधिकार की रक्षा।

प्रश्न- इस निर्माण का प्रारम्भ कैसे होगा?

स्वामीजी- व्यक्ति-निर्माण से ही प्रारम्भ होगा। अपने सुधार में ही सभी का सुधार निहित है।

प्रश्न- सत्य क्या है?

स्वामीजी- जिससे असत्य की जानकारी हो, जो कभी नष्ट न होता हो। सदैव रहने वाले को सत्य कहते हैं।

प्रश्न- मनुष्य का मरने के बाद पुनर्जन्म होता है क्या?

स्वामीजी- प्राणशक्ति समाप्त हो जाय और इच्छा समाप्त न हो, तो जन्म होता है और इच्छा समाप्त हो जाय तो जन्म नहीं होता।

प्रश्न- इतना पढ़ने-सुनने और साधन (क्रियात्मक) करने पर भी साधन-निर्माण क्यों नहीं हुआ?

स्वामीजी- आज का साधक सम्मान चाहता है, मन की बात पूरी करना चाहता है और दूसरों को बुरा समझने में दक्ष हो गया है—इन तीन बातों से साधन निर्माण-नहीं हुआ।

प्रश्न- लोभ और मोह का नाश कैसे हो?

स्वामीजी- मिले हुए को अपना और अपने लिए न मानने से लोभ और मोह का नाश होता है।

प्रश्न- सुख और रस में क्या अन्तर है?

स्वामीजी- सुख हमेशा कम होता जाता है और रस उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।

प्रश्न- अविनाशी जीवन की लालसा कैसे जगे?

स्वामीजी- विनाशी जीवन की वास्तविकता का बोध होने पर अविनाशी जीवन की लालसा स्वत: जगेगी।

प्रश्न- पूर्ण विकास का क्या अर्थ है?

स्वामीजी- हम संसार और परमात्मा के काम आ जायें और बदले में दोनों से कुछ न चाहें।

प्रश्न- भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक उन्नति का क्या अर्थ है?

स्वामीजी- संसार हमारी आवश्यकता अनुभव करे-यह भौतिक उन्नति है और हमें संसार की आवश्यकता न रहे-यह आध्यात्मिक उन्नति है।

प्रश्न- भय और दरिद्रता का नाश कैसे हो?

स्वामीजी- ममता छोड़ने से भय का और कामना छोड़ने से दरिद्रता का नाश हो जाता है।

प्रश्न- क्या व्यक्तिगत सम्पत्ति होनी चाहिए?

स्वामीजी- व्यक्तिगत सम्पत्ति अवश्य होनी चाहिए, परन्तु उसे अपनी और अपने लिए नहीं मानना चाहिए।

प्रश्न- निश्चिन्तता कैसे आती है?

स्वामीजी- अकिंचन, अचाह, अप्रयत्न होकर अपने प्रियतम को अपने में स्वीकार करने से निश्चिन्तता आ जाएगी।

प्रश्न- महाराज जी! मरने का भय कैसे मिटे?

स्वामीजी- सोचो! मरने का भय किसको होता है?

(1) जो अपने लिये जीता है। जो समाज के लिये, देश के लिये, विश्व के लिये जीता है, वह मरने से कभी नहीं डरता।

(2) जो गलत काम करता है।

(3) जो अपने लक्ष्य को नहीं जानता।

(4) जो सत्संग नहीं करता।

जो सत्संगी है, जो अपने लक्ष्य को जानता है, जिसने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है, वह मरने से नहीं डरता। क्यों नहीं डरता? क्योंकि मरने का प्रश्न उसके सामने नहीं रहता। बड़ी गम्भीर बात है!

प्रश्न- मरने का प्रश्न किसके सामने रहता है?

स्वामीजी- जिसने शरीर के रहते हुये अपने को शरीर से अलग अनुभव नहीं किया। जिसने बल का सदुपयोग नहीं किया। जिसने निष्कामता को नहीं अपनाया, निर्ममता को नहीं अपनाया। आप मानव हैं। मानव होने के नाते आपको सत्संगी होकर जीवन ही में मृत्यु का अनुभव करके अमरत्व को प्राप्त कर लेना है। बिना अमरत्व की माँग के हम एक भी क्षण न रहें। इस माँग को जगा लेने से सामर्थ्य आ जायेगी। मृत्यु का भय मिट जायेगा।

प्रश्न- प्रभु का कृपापात्र कैसे बनें?

स्वामीजी- जब प्रेमी वह कर डालता है जो उसे करना चाहिये, तब प्रेमपात्र क्या वह नहीं कर सकते जो उनको करना चाहिये? स्वयं देखो! क्या हम जो कुछ कर सकते हैं, उसे कर दिया या नहीं। यदि कर दिया तो कुछ भी करना शेष नहीं है। यदि नहीं किया है तो फिर कृपा के अधिकारी नहीं हैं। कृपासिंधु की कृपा का अनुभव कृपापात्र को होता है। जो प्रेमी अपनी सारी शक्ति लगाकर क्रिया को भाव में विलीन कर शिशु की भाँति प्रेमपात्र की कृपा की प्रतीक्षा करता है, वह प्रेमपात्र का पवित्र प्रेम अवश्य पाता है। यह नि:सन्देह सत्य है।

प्रश्न- ज्ञान और प्रेम में सरल कौन सा है?

स्वामीजी- दोनों ही सरल हैं। पसन्द करने की बात है।

प्रश्न- विश्वास करके भगवान को प्राप्त कर लिये, अब क्या करें?

स्वामीजी- आनन्द करो! भगवान का काम करो! तब भगवान तुम्हें प्यार करेंगे। जैसे वेदों के चार महावाक्य हैं, उसी प्रकार मानव सेवा संघ के चार महावाक्य हैं। पहला- मेरा कुछ नहीं है। दूसरा-मुझे कुछ नहीं चाहिये। तीसरा- प्रभु अपने हैं; और चौथा- सब कुछ प्रभु का है। दो विश्वास के आधार पर, दो विचार के आधार पर। स्वीकार कर लें, प्रभु का प्रेम भी प्राप्त हो जायेगा।

प्रश्न- जब ईश्वर से सम्बन्ध है तो उसकी बनाई हुई चीजों से भी तो सम्बन्ध होना चाहिये?

स्वामीजी- ओ....हो!....हो!! ईश्वर की बनाई हुई चीजों से सम्बन्ध होना चाहिये ईश्वर का काम करने के लिये। पति की कमाई से सम्बन्ध है किसी और के लिये थोड़े ही, बल्कि पति की सेवा के लिये।

आप तो ईश्वर की बनाई हुई चीजों को अपना मान लेते हैं। ईश्वर का नाम ही काट देते हैं। जरा गौर फरमाइये!

प्रश्न- ईश्वर हमारा है तो उसकी बनाई हुई चीज भी तो हमारी है?

स्वामीजी- नहीं, अगर ईश्वर की बनाई चीज आपकी है और इसी सत्य को मानो तो हम भी आपके हैं! हमको तो आप अपना मानते नहीं हैं। अपना बैंक का एकाउन्ट थोड़े से लोगों के लिये रख देते हो। फिर तो आपका पड़ोसी भी आपका है। वह भी तो नहीं मानते! तुम तो ईश्वर की दुनियाँ में अपनी एक नई दुनियाँ बनाते हो। अगर ईश्वर की बनाई हुई सभी चीजें हमारी हैं तो हमारे जीवन में कहाँ वैर-भाव रहेगा? कहाँ विषमता रहेगी? कहाँ संकीर्णता रहेगी? कहाँ कामना रहेगी? सभी हमारे हैं तो कामना आयेगी? अगर इस सत्य को भी माना होता तो काम बन जाता। पर दु:ख की बात तो यह है कि ईश्वर की चीजों को भी अपना नहीं मानते। कुछ चीजें अपनी मानते हैं। एक अलग मिल्कियत बनाते हैं। एक नई दुनियाँ बनाते हो। वही बन्धन का कारण है। उसी से पराधीन होते हो। जड़ता तथा अभाव में आबद्ध होते हो।

प्रश्न- शरीर का उपयोग क्या हो सकता है?

स्वामीजी- संसार के साथ हैं तो शरीर का उपयोग संसार के अहित में न हो। वाणी से कटु मत बोलो-सेवा हो गई। कटु नहीं बोलोगे तो मधुर बोलोगे। अहितकर मत बोलो - क्या होगा? हितकर बोलोगे। आपके शरीर का उपयोग दूसरे के अहित में न हो। अहित में कब होता है? जब अपने सुख में होता है। अपने लिये शरीर नहीं है। अर्थ यह है कि शरीर का उपयोग अपने सुख-भोग में नहीं करना है।

प्रश्न- शरीर मेरा नहीं है, शरीर मैं नहीं हूँ - फिर सेवा कैसे?

स्वामीजी- देखिये! कोई चीज 'मैं' होती है - कोई चीज 'मेरी' होती है। मान लो मेरी भी नहीं है, मैं भी नहीं है - यह ज्ञान से सिद्ध है, लेकिन शरीर का उपयोग आप करते हैं कि नहीं? या तो आप शरीर से अकर्ता हो जायें, अभोक्ता हो जायें, असंग हो जायें - तब तो यह बात बनेगी कि मुझे क्या मतलब शरीर की सेवा से! वैसे असंग होना भी तो सेवा हुई। असंग होने से क्या होगा? जिन चीजों पर आप अपना अधिकार मानते थे - वह हट गया, तो जो चीजें थीं वह समाज की हो गईं। आपको निर्विकारता प्राप्त हो गई।

प्रश्न- महाराज जी! सेवा शरीर के द्वारा ही तो करते हैं?

स्वामीजी- शरीर के द्वारा 'होती' है कि आप करते हैं? सोचिए! जब हम बुराई रहित होने का व्रत लेते हैं तो भलाई करनी नहीं पड़ती। अपने आप होती है। झूठ न बोलने का निर्णय करने पर अपने आप सत्यवादी हो जाते हैं। यह तो परिस्थिति की बात है। सोचिये, आखिर आप पूछते हैं शरीर के द्वारा, कहते हैं शरीर के द्वारा। कोई खिलाता है तो शरीर के द्वारा, खाते हैं तो शरीर के द्वारा। अब रोटी खाना शरीर का काम है, आपका धर्म नहीं है। 'शरीर मेरा नहीं, शरीर मैं नहीं'—यह तो विदेह की बात है। कर्तव्य क्षेत्र की बात तो है बुराई रहित होना।

प्रश्न- चाह की उत्पत्ति का हेतु क्या है?

स्वामीजी- रुचि और अरुचिरूपी भूमि में चाहरूपी दूर्वा उत्पन्न होती है। यदि रुचि-अरुचि का समूह न रहे, तो चाह की उत्पत्ति के लिए कोई स्थान ही नहीं रह जाता; कारण कि रुचि-अरुचि के आधार पर ही सीमित अहंभाव सुरक्षित रहता है। उसी से चाह की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न- हम किसे अपना कह सकते हैं?

स्वामीजी- अपना उसी को कह सकते हैं, जिससे देश-काल की दूरी न हो, जो उत्पत्ति-विनाशयुक्त न हो और जो अपने को अपने-आप प्रकाशित करने में समर्थ हो। क्योंकि अपने से अपना वियोग सम्भव नहीं है, और जो अपना नहीं है उससे वियोग होना अनिवार्य है। इस दृष्टिकोण से बाह्य वस्तु की तो कौन कहे शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन आदि को भी अपना नहीं कह सकते।

प्रश्न- हम अपने को भोक्ता न मानें तो क्या मानें?

स्वामीजी- अपने को साधक मानें, सेवक माने, जिज्ञासु माने!

प्रश्न- हमारा साधन क्या है और हमारा साध्य क्या है?

स्वामीजी- साधक उसे कहते हैं, जिसका कोई साध्य हो और जिसमें साधन की माँग हो। साधक, साधन और साध्य में जातीय तथा स्वरूप की एकता और गुणों की भिन्नता होती है, इसी कारण साधक साधन होकर साध्य से अभिन्न हो सकता है। इस दृष्टि से समस्त जीवन साधन होने पर ही सिद्धि सम्भव है।

प्रश्न- संकल्प-निवृत्ति में जो शान्ति है, उसका महत्त्व तथा महिमा क्या है?

स्वामीजी- संकल्प-निवृत्ति की शान्ति भोग को योग में, पराधीनता को स्वाधीनता में और जड़ता को चिन्मयता में परिवर्तित करने में समर्थ है।

प्रश्न- साधन-पद्धतियाँ मान्यताएँ हैं, तो फिर सिद्धान्त क्या है?

स्वामीजी- सिद्धान्त एक है, अनेक नहीं और उसका वर्णन नहीं हो सकता; प्रत्युत उसकी प्राप्ति हो सकती है। कारण कि वर्णन करने की सामर्थ्य सीमित है और सिद्धान्त असीम है।

प्रश्न- राग-रहित होने के लिए हमें परिस्थिति का सदुपयोग किस भाव से, किस प्रकार से और किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए करना चाहिए?

स्वामीजी- सर्वहितकारी तथा सर्वात्मभाव ही वास्तविक भाव है, विरक्ति तथा उदारतापूर्वक कार्य करने का ढंग ही वास्तविक ढंग है और उस अनन्त से अभिन्न होने का उद्देश्य ही वास्तविक उद्देश्य है। यदि परिस्थिति का सदुपयोग करने में उदारता तथा विरक्ति नहीं अपनाई गई तो सर्वहितकारी भाव स्वार्थभाव में, सर्वात्मभाव देहभाव में और अनन्त-नित्य-चिन्मय जीवन का उद्देश्य भोग प्राप्ति में बदल जाएगा, जो वास्तविक उद्देश्य नहीं है।

प्रश्न- क्या परिस्थिति नित्य-चिन्मय नहीं हो सकती?

स्वामीजी- यह प्रश्न वर्तमान जीवन से सम्बन्ध नहीं रखता। हाँ, यह अवश्य है कि हमारी आन्तरिक माँग नित्य-चिन्मय जीवन की ही है। उसकी पूर्ति के लिए चाहे हमें उस जीवन से अभिन्न होना हो अथवा वह जीवन हमारे में अवतरित हो। पर इन दोनों बातों के लिए परिस्थिति से तो असङ्ग होना ही होगा। क्योंकि परिस्थिति से असङ्ग बिना हुए जड़ता से जो हमारा तादात्म्य हो गया है, वह निवृत्त नहीं हो सकता और न काम का ही नाश हो सकता है। काम का नाश बिना हुए न तो राम से अभिन्नता हो सकती है, न राम से योग ही हो सकता है और न राम का प्रेम ही मिल सकता है।

प्रश्न- प्रभु को किस स्वरूप में स्वीकार कर समर्पण किया जाय?

स्वामीजी- प्रभु दो नहीं, एक हैं। पहली बात तो यह है कि वे गैरहाजिर नहीं हैं, हाजिर-नाजिर हैं। अभी हैं, अपने में हैं। सदैव होने से

अभी हैं। सर्वत्र होने से अपने में हैं। सभी के होने से अपने हैं। वे कैसे हैं? यह प्रश्न समर्पण के लिये जरूरी नहीं है। क्यों जरूरी नहीं है? आप विचार कीजिये। प्रभु कैसे हैं, इस बात की चर्चा भक्तों ने की है अनेक ढंग से। एक ढंग से तो की नहीं है कि कह दिया जाय ऐसे हैं, ऐसे हैं! किसी ने कहा- साकेतविहारी हैं। किसी ने कहा- गोलोकवासी हैं। किसी ने कहा- वैकुण्ठवासी हैं। किसी ने कहा- शिवलोक वासी हैं। किसी ने कहा- घट-घट वासी हैं। किसी ने कहा कुछ, किसी ने कहा कुछ - इस तरह तो आप पचड़े में फँस जायेंगे!

वे चाहे जैसे हों, कोई चिन्ता की बात नहीं। अपने को तो यह एतराज है नहीं कि वे सगुण नहीं हैं। अपने को इसमें भी एतराज नहीं कि वे निर्गुण नहीं हैं। चाहे जैसे हों, चाहे कुछ करें, गलत तो करते नहीं! जो करेंगे, ठीक ही करेंगे। इसलिये समर्पण का अर्थ ही होता है - हर चीज पर से अपनी ममता हट जाय और उनकी सील लग जाय। मन तेरा, तन तेरा, प्राण तेरा, सारी सृष्टि तेरी। यह है पहली बात समर्पण की।

दूसरी बात- मैं भी तेरा। अपने को परमात्मा का मान लेने से मनुष्य अभय होता है। क्योंकि परमात्मा भयहारी हैं। परमात्मा दु:खहारी हैं। दु:ख हरने वाला है। भय हरने वाला है। जीवन देने वाला है। तो यदि परमात्मा की महिमा सुनकर आप अपने को समर्पण नहीं कर सकते और किसी एक प्रतीक को लेकर समर्पण करना चाहते हैं तो जो प्रतीक आपको प्यारा लगता हो! लेकिन वह प्रतीक तो खाली इस बात का सबूत है कि 'वे ऐसे हैं।' लेकिन जो प्रतीक है उसे तो आप जानते ही हो कि वह आपका काल्पनिक है, मनुष्य कृत है। क्या राय है? जैसे गोस्वामीजी ने लिख दिया, "कोटि मनोज लजावन

हारे....." उनमें इतना सौन्दर्य है कि करोड़ों कामदेवों को लज्जित होना पड़ता है। उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। क्या राय है आपकी? नहीं कर सकते! इसलिये प्रभु चाहे जैसे हों, पर 'मैं आप ही का हूँ।' हर चीज आपकी है। और आप भय के हरने वाले हैं। मृत्यु का भय हर लेते हैं; पराधीनता, अभाव का भय हर लेते हैं और जीवन देने वाले हैं।

प्रश्न- जीवन किसे कहते हैं?

स्वामीजी- जीवन माने जिसका नाश न हो। जीवन माने जो रसरूप हो। जीवन माने जो असीम हो। उनकी महिमा को स्वीकार करके अपने को समर्पण कर दिया जाय, अर्थात् अपना कोई संकल्प न रखा जाय। प्रभु के संकल्प में अपने संकल्प को विलीन कर दिया जाय। इससे प्रभु के प्रेम की, प्रभु की स्मृति की जागृति होगी। उनकी हर चीज, यथा नाम भी प्यारा लगेगा, महिमा भी प्यारी लगेगी, रूप भी उनका प्यारा लगेगा। अगर सृष्टि उनकी है तो वह भी अपने को प्यारी लगेगी। प्यारी तो लगेगी, पर ममता उसमें नहीं होगी। सृष्टि की सेवा करेंगे, पर अपना नहीं मानेंगे। अर्थ क्या हुआ कि सेवा करने के लिये सृष्टि है और प्यार करने के लिये प्रभु हैं। यह सब कब होगा? जब इस बात को आप स्वीकार कर लें कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, प्रभु मेरे अपने हैं और सब कुछ प्रभु का है। ये चार महावाक्य हैं जीवन उपयोगी। देखिये, जब जीवन में प्यार भर जाता है तो नीरसता नाश हो जाती है। मन शान्त हो जाता है। बुद्धि सम हो जाती है। तुम्हारी माँग को प्रभु जानते हैं। तुम्हें भी वे जानते हैं। तुम्हारी भूल को भी प्रभु जानते हैं। उसे वे मिटा सकते हैं। माँग जग जाय बस।

प्रश्न- स्वामीजी! अपना मन स्थिर कैसे हो?

स्वामीजी- जब तक आपका अपना मन है, तब तक कभी भी स्थिर नहीं होगा। भगवान् को आप अपना मान लें, तो आपका मन भगवान् में विलीन हो सकता है। हम मन को अपना मान कर कभी स्थिर नहीं कर सके और न कोई कर सकता है। संसार के सम्बन्ध का जो प्रभाव है, सच पूछो तो उसी का नाम मन है। मन कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। यह संसार के सम्बन्ध का प्रभाव है। यानी संसार का जब आकर्षण होता है, तभी मालूम होता है कि हमारे पास मन है।

प्रश्न- कैसे जानें कि मेरे संकल्प प्रभु के संकल्प में विलीन हो गये?

स्वामीजी- जानो मत, मानो। जान तो आप सकते ही नहीं। जानना होता है उसके सम्बन्ध में जिसके सम्बन्ध में विकल्प हो। ऐसे मानो कि अपना करके संकल्प मत रखो। देखिये- प्रभु का संकल्प सामर्थ्य और ज्ञान विरोधी नहीं होगा और वह पूरा जरूर हो जायेगा। प्रभु का संकल्प ज्ञान और सामर्थ्य के अनुरूप होता है। वह कर्त्तव्य का रूप धारण करके पूरा हो जाता है। इतनी कसौटी रख लीजिये ज्यादा-से-ज्यादा। जब आप स्वीकार कर लेंगे कि मुझे कुछ नहीं चाहिये तब फिर जो होगा वह प्रभु का ही संकल्प होगा। विश्वास में बुद्धि नहीं लगाई जाती।

प्रश्न- अगर हम ऐसा सोच लें कि मुझे कुछ नहीं चाहिये, केवल प्रभु ही चाहिये तो?

स्वामीजी- प्रभु चाहिये तो प्रभु कोई दूर नहीं हैं। प्रेम के अभाव से दूर मालूम होते हैं। मान लो प्रभु आपको मिल जायँ और उनका प्रेम न मिले तो ठन-ठन पाल रह जाओगे। सत्ता रूप से तो परमात्मा सबको

मिला हुआ है न। आप विचार करके देखो। परमात्मा के प्रेम की माँग जब तक नहीं होगी, तब तक तुम्हारे और परमात्मा के मिलन का जो आनन्द है वह नहीं आयेगा। क्योंकि परमात्मा तो मिला ही हुआ है। कोई ठौर खाली है जहाँ परमात्मा न हो! बोलो? नहीं है। प्रभु मुझको चाहिये क्यों? मुझे उनका प्रेमी होना है यों। नहीं तो प्रभु का आचार डालोगे क्या, या भोग करोगे प्रभु का? मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ, गम्भीरता से सोचो! यह भी लोगों को भ्रम हो गया है कि प्रभु प्राप्त हो जायं, प्रभु प्राप्त हो जायं। अरे प्रभु अप्राप्त नहीं हैं प्यारे! प्रेम अप्राप्त है। इसीलिये प्रभु अप्राप्त लगता है। संसार प्राप्त नहीं है, आसक्ति प्राप्त है। इसलिये प्राप्त लगता है। संसार कहाँ प्राप्त है आपको? ममता आपमें है, इसलिये आपको लगता है प्राप्त हो गया है।

यह भी प्रश्न कोई बढ़िया नहीं है कि मुझे प्रभु प्राप्त हो जायं। मुझे प्रभु का प्रेम प्राप्त हो जाय। कुछ मत चाहो तो प्रभु तो प्राप्त हैं ही। दो ही चीज हैं- एक चाह और एक परमात्मा। चाह छूट गई, परमात्मा रह गया—ऐसा मान लो। यह संत मत है। हमारे और परमात्मा के बीच में हमारी भूल से उत्पन्न हुई कामना ही पर्दा है। कुछ मत चाहो, बस परमात्मा प्राप्त है। लेकिन प्राप्त होने से काम नहीं चलेगा जब तक कि उसका प्रेम न प्राप्त हो। इसी को भक्ति-रस कहते हैं। जो आपको पसन्द आ जाय। जिसमें आपको सन्देह न हो। देखिये, जिस बात में सन्देह नहीं होगा, जो बात आपको रूचिकर होगी, जो सामर्थ्य के अनुसार होगी, वही जीवन के साथ मिल जायेगी। परमात्मा है, इसमें सन्देह मत करो। अपना है, इसमें विकल्प मत करो। उसका प्रेम मुझे चाहिये। प्रभु अपना प्रेम दे दो! प्रभु अपनी आस्था दे दो! प्रभु अपना विश्वास दे दो! माँगो, जरूरत महसूस करो।

देखो! संसार के पाने में और परमात्मा के पाने में एक बड़ा भारी अन्तर है। आप संसार की कामना करते हो तो उसके लिये प्रयास भी करना पड़ता है। कर्म भी करना पड़ता है। खाली कामना मात्र से नहीं होता। जल पीने की कामना करते हो तो उसके लिये ग्लास हाथ से उठाना होगा, मुँह से लगाना पड़ेगा। फिर भी पानी पी पाएं या न पी पाएं, इसमें भी सन्देह है। लेकिन परमात्मा की प्राप्ति में केवल आवश्यकता अनुभव करो- कोई अन्य प्रयास नहीं करना पड़ेगा। बुराई छोड़नी पड़ेगी, अचाह होना पड़ेगा। यह प्रयास तो शरीर धर्म नहीं है न! जानी हुई, की हुई बुराई छोड़ दो, अचाह हो जाओ, प्रभु की आवश्यकता अनुभव करो, प्रभु के प्रेम की आवश्यकता अनुभव करो, अवश्य मिल जायेगा।

प्रश्न- अचाह का क्या तात्पर्य है?

स्वामीजी- मुझे कुछ नहीं चाहिये।

प्रश्न- गृहस्थ जीवन में तो वस्तुओं की चाह रहेगी ही?

स्वामीजी- गृहस्थ जीवन में तो आवश्यक वस्तुयें बिना माँगे मिलती हैं। चाहने से नहीं मिलती। नहीं तो कौन सा गृहस्थ ऐसा है जो करोड़पति से कम रहना चाहे! सब चाहते हैं सुन्दर नारी, सपूत पुत्र और समाज में ऊँचा स्थान! लेकिन मिल जाता है क्या चाहने से? वह तो विधान के अनुसार जो मिलना है मिल ही जायेगा। चाहो, चाहे मत चाहो। न चाहने से गृहस्थी नहीं चलेगी, ऐसी बात नहीं है। और चाहने से चलेगी, ऐसी बात भी नहीं है। 'चाह' तो हमारी आपकी भूल है। बाकी तो वस्तु मिली है, योग्यता मिली है, परिस्थिति मिली है, सामर्थ्य मिली है, उसका सदुपयोग करो। व्यक्ति मिले हैं, उनकी सेवा करो; आदर दो, प्यार दो। यही तो गृहस्थी है। बिना कार्य किए भी तो गृहस्थी

का काम नहीं चलता! कार्य करो, लेकिन उसको भगवान का मान-कर करो। हर चीज पर भगवान की मुहर लगा दो। शरीर पर, मन पर, बुद्धि पर, पत्नी पर, पुत्र पर, परिवार पर, हर चीज पर भगवान की मुहर लगा दो।

प्रश्न- स्वामी जी! कोई प्रयास न करें तो काम अपने आप हो जायेगा क्या?

स्वामीजी- काम करने का प्रयास करो। कामना मत करो। कर्त्तव्य परमात्मा की प्राप्ति में बाधक नहीं है। कामना बाधक है।

प्रश्न- परमात्मा की प्राप्ति की इच्छा नहीं होने का कारण क्या है?

स्वामीजी- सुख का भोग! भोग में रुचि है। भोग पसन्द है। पराधीनता पसन्द है। यही भूल है।

प्रश्न- सुना है संसार जागते का सपना है। जो भाग्य में है वह अपने से हो जाएगा?

स्वामीजी- अपने से नहीं हो जाता करना पड़ता है। तीन अवस्थायें हैं- जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। यह प्राकृतिक विधान है। जाग्रत है तो स्वप्न भी होगा और सुषुप्ति भी होगी। जड़ता में लय हो गये, सुषुप्ति हो गई। सूक्ष्म शरीर की रचना हुई-स्वप्न हो गया। वैसे तो जाग्रत भी स्वप्न ही है।

प्रश्न- ध्यान कैसे किया जाता है? ध्यान पर बैठते हैं लेकिन लगता नहीं है?

स्वामीजी- जब तक ध्यान करेंगे, ध्यान कभी होगा ही नहीं। थोड़े दिन पहले एक आस्ट्रेलियन आदमी मेरे पास आया था आश्रम में। उसने कहा कि मुझे Meditation के सम्बन्ध में कुछ बतायेंगे?

मैंने कहा 'नहीं'। क्यों? तुमसे होगा नहीं यों! फिर भी एक हवा बह रही है—ध्यान करो, ध्यान करो! यह हवा इसलिये बह रही है - आप विचार करके देखो - आपको प्यास लगी हो, पानी का ध्यान करने से होगा कि अपने आप आयेगा? श्रोता-प्यास लगते ही आयेगा। पानी के ध्यान का मूल कारण हुआ प्यास। अच्छा, आपको अपने परिवार का ध्यान आता है कि नहीं आता? श्रोता-आता है। उसका मूल कारण हुआ "अपनापन"। तो आवश्यकता और अपनापन ध्यान का मूल है। आँख बन्द करके बैठना, अकड़कर बैठना, ध्यान का मूल नहीं है। यह तो बैठने की बात है नहीं। यह तो अनुभव करने की बात है।

प्रश्न- स्वप्न में जो कुछ दिखायी देता है, उसका रहस्य समझ में नहीं आता?

स्वामीजी- रहस्य तो इसलिये समझ में नहीं आता कि वह अवस्था आपने थोड़े ही बनाई है। मनुष्य कृत स्वप्न थोड़े ही होता है! स्वप्न एक अवस्था है और वह होती है इसलिये कि अगर स्वप्न अवस्था न रहे जीवन में, तो मानसिक रोग हो सकते हैं। बहुत से संकल्प ऐसे हैं जिन्हें आप पूरा भी नहीं कर पाते और छोड़ भी नहीं पाते, तो वे स्वप्न में पूरे हो जाते हैं। या, उनका परिणाम स्वप्न में दिख जाता है।

कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं कि जो कुछ हमने किया है या करना चाहते हैं, वह आते हैं। भुक्त-अभुक्त इच्छाओं के प्रभाव से भी होते हैं। कुछ स्वप्न ऐसे भी होते हैं जो भविष्य में होने वाले हैं। सच्चे भी होते हैं और उल्टे भी होते हैं। किसी को बीमार देखा, वह अच्छा-भला मिला और किसी को अच्छा-भला देखा, उसकी मृत्यु हो गई।

स्वप्न अपने वर्तमान की ठीक दशा का बोध कराने वाली बात है। आप कहते हैं स्वप्न में ही भगवान का दर्शन हो जाता-तो भाई, प्रेम चाहो दर्शन मत चाहो, तो शायद दर्शन भी हो जाय। क्योंकि भगवान प्रेम का पान करने के लिये प्रकट होता है। ईमानदारी से देखा जाय तो भगवान प्रकट होता है प्रेम के रस का पान करने के लिये। भगवान प्रकट नहीं होता अपनी शकल दिखाने के लिये! उसे गरज नहीं पड़ी है! जब हम प्रेमी होंगे तभी भगवान प्रकट होंगे। प्रेम नहीं होगा, वहाँ भगवान प्रकट कैसे होगा?

मैं पूछता हूँ कि भगवान आपको क्यों मिलें? क्या दोगे आप उसको? उसे क्या गरज पड़ी है और आप भगवान को क्यों मिलें? आपको क्या गरज पड़ी है? दोनों की जरूरत हो, तब न मिलेगा? अगर आपको प्रेमी होने की जरूरत है और आप प्रेमी होते हैं तो प्रभु दर्शन देते हैं। प्रेमियों को प्रभु दर्शन देते हैं। यह आजकल भी सत्य है, पहले भी सत्य था; अकाट्य सत्य है।

देखिये! प्रेमी दर्शन के बाद क्या माँगते हैं- तुम प्यारे लगते रहो, तुम प्यारे लगते रहो। भगवान का और आपका सम्बन्ध प्रेम का है। मुक्ति का सम्बन्ध ज्ञान से है और सेवा का सम्बन्ध संसार से है। तीन ही क्षेत्र हैं आपके जीवन के-संसार में रहो तो सेवा करो। मुक्ति चाहो तो ज्ञानपूर्वक ही होगी और किसी प्रकार नहीं होगी। प्रेमी होना चाहो तो भगवत् प्राप्ति होगी। बस, भगवान प्रकट हो जायेगा। अप्राप्त तो भगवान है नहीं! यह तो खाली भ्रम से हम लोग कहते हैं- भगवान नहीं मिला-भगवान नहीं मिला। नहीं मिला तो मिला क्या? भगवान ही तो मिला है। और तो कोई चीज मिलने वाली है नहीं। मिलती भी नहीं है; मिल सकती भी नहीं है।

प्रश्न- शरीर की सेवा का स्वरूप क्या है और निर्भयता कैसे मिले?

स्वामीजी- जितेन्द्रियता, निर्विकल्पता और समता के द्वारा ही शरीर की पूर्ण सेवा हो सकती है। जितेन्द्रियता के द्वारा शरीर में शुद्धि आती है, मन की निर्विकल्पता के द्वारा सामर्थ्य आती है और बुद्धि की समता के द्वारा शान्ति आती है। शुद्धि, सामर्थ्य और शान्ति आ जाने पर सर्वहितकारी प्रवृत्तियाँ स्वतः होने लगती हैं, जो विश्व की सेवा है। शरीर और वस्तु आदि की ममता तो केवल आसक्ति ही उत्पन्न करती है, उससे न तो शरीर का हित होता है और न समाज का ही। इस दृष्टि से वस्तु आदि के प्रति ममता करने का कोई स्थान ही नहीं है। जिनसे ममतारहित होना है, उनकी सेवा अवश्य करनी है और जिन पर विश्वास करना है। उनसे ही प्रेम करना है, उन्हीं को अपना मानना है और उन्हीं से अभिन्न होना है। यह तभी सम्भव होगा, जब हम अचाह हो जाएँ; क्योंकि चाह न तो प्रेम उत्पन्न होने देती है, न अपना मानने देती है और न अभिन्न होने देती है। शरीर से सम्बन्ध विच्छेद होने पर सब प्रकार की चाह का अन्त स्वतः हो जाता है। इस दृष्टि से शरीर की सेवा में ही उनका प्रेम निहित है, जिनसे हमें अभिन्न होना है, क्योंकि समस्त विश्व उस अनन्त की ही अभिव्यक्ति है। शरीर तथा विश्व की सेवा ही 'कर्त्तव्य' का, शरीर आदि से सम्बन्ध-विच्छेद ही 'विवेक' का और जो वस्तु, अवस्था आदि से अतीत है, उससे नित्य- सम्बन्ध ही 'विश्वास' का प्रतीक है। अतः अविवेक, अविश्वास तथा अकर्त्तव्य का अन्त होने पर ही निर्भयता प्राप्त हो सकती है।

प्रश्न- नीरसता का उद्‌गम स्थान क्या है?

स्वामीजी- नीरसता का उद्‌गम स्थान है, विषय-रस का सेवन, अर्थात् विषय-सुख में वह जीवन-बुद्धि है, जो अविवेकसिद्ध है। प्राकृतिक नियम के अनुसार जो सुख-भोग विकास में बाधक होता है, उसका राग मिटाने के लिए ही प्रतिकूल परिस्थिति आती है और जो सुख विकास में साधक होता है, उसकी पूर्ति के लिए अनुकूल परिस्थिति आती है; अथवा यों कहो कि प्रतिकूलता जागृति के लिए आती है और अनुकूलता उदार बनाने के लिए। परन्तु जो दु:ख में जाग्रत् नहीं होता और सुख में उदार नहीं रहता, वही परिस्थितियों की दासता में आबद्ध होता है और उसी के जीवन में-नीरसता निवास करती है।

प्रश्न- क्या सुख-भोग का जीवन में कोई स्थान ही नहीं है?

स्वामीजी- सुख की वास्तविकता जानने के लिए सुख देने का स्थान है, लेने का नहीं। इस दृष्टि से परस्पर में सुख देने की ही रुचि रहनी चाहिए, लेने की नहीं। सुख देने की रुचि सुख-भोग की आसक्ति को खा लेती है। फिर साधक सुगमतापूर्वक सुख की दासता से मुक्त हो जाता है, क्योंकि सुख देने की लालसा 'त्याग' और 'प्रेम' को पुष्ट करती है। अत: सुख देने के लिए ही मिला है, भोग के लिए नहीं। सुख देने का जो सुख है, वह साधक को उदार बनाता है।

प्रश्न- उद्‌देश्य का ज्ञान कैसे हो?

स्वामीजी- हमें अनेक इच्छाओं के मूल में अपनी स्वाभाविक आवश्यकता को जानना होगा, क्योंकि आवश्यकता के ज्ञान में ही उद्‌देश्य का ज्ञान विद्यमान है। आवश्यकता उसी का नाम है, जिसकी पूर्ति अनिवार्य हो, जिसके लिए अनेक इच्छाओं का त्याग किया जा सके; पर

जिसका त्याग किसी भी प्रकार न हो सके। जिस आवश्यकता का त्याग किसी प्रकार नहीं हो सकता, उसका ज्ञान तभी सम्भव होगा, जब हम उन सभी इच्छाओं का त्याग कर दें, जिनकी पूर्ति के बिना सुखपूर्वक अथवा दु:खपूर्वक रह सकते हैं।

प्रश्न- श्रमरहित होने का उपाय क्या है?

स्वामीजी- सर्वप्रथम चाह और अचाह के जाल से मुक्त हो जाएँ, फिर अपनी सीमित शक्तियों को अनन्त शक्ति के समर्पित कर दें। ऐसा करने पर जिससे समस्त सृष्टि गतिशील हो रही है उसी से सब कुछ होगा। उसके लिए चिन्ता व्यर्थ है। श्रमरहित होने का अर्थ कर्तृत्व के अभिमान से रहित होना है, कर्तव्य से रहित होना नहीं! कर्तव्य के लिए तो अनन्त शक्ति स्वत: कार्य कर रही है। हमें अपनी सीमित शक्तियों को उसी में मिला देना है, अर्थात् 'करना' 'होने' में परिवर्तित कर देना है।

प्रश्न- भेद का स्वरूप क्या है और उसकी उत्पत्ति का हेतु क्या है?

स्वामीजी- समस्त विश्व एक है, जीवन एक है, तत्त्व एक है। उसमें अनेकता को स्वीकार करना ही भेद का स्वरूप है और अविवेक ही उसका कारण है। अविवेक के कारण ही प्राणी शरीर और विश्व का भेद स्वीकार करता है, जो वास्तव में नहीं है। जैसे अनेक कीटाणुओं का समूह एक शरीर है, वैसे ही समस्त दृश्य का समूह एक विश्व है। वह विश्व जिसके प्रकाश से प्रकाशित है तथा जिसमें उसकी उत्पत्ति, स्थिति और लय है, वह तत्त्व भी एक है। इस दृष्टि से उस एक में ही अनेकों की प्रतीति होती है, पर अनेक एक से भिन्न कभी नहीं होते। अथवा यों कहो कि अनेकता उस एक की ही विभूति-मात्र है। यद्यपि

किसी भी विभूति की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती; परन्तु जिसकी वह होती है उससे भिन्नता का भास अवश्य होने लगता है, जो वास्तविक नहीं है।

प्रश्न- दृश्य का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- जिसमें प्रवृत्ति तो हो, पर जिसकी प्राप्ति न हो। अर्थात् जिसकी ओर दौड़ते हों, पर उसे पकड़ न पाते हों-यही दृश्य का वास्तविक स्वरूप है।

प्रश्न- मानव-सेवा-संघ की पहली प्रार्थना में यह कहा जाता है कि दु:खियों के हृदय में त्याग का बल प्रदान करें। दु:खी बेचारा क्या त्याग करेगा? इस पर प्रकाश डालें।

स्वामीजी- जब मनुष्य कुछ चाहता है और उसका चाहा हुआ नहीं होता है तो वह दु:ख का अनुभव करता है। इससे सिद्ध हुआ कि दु:ख का कारण 'चाह' है। अत: अगर दु:खी दु:ख से छुट्टी पाना चाहता है तो उसे चाह का त्याग कर देना चाहिए। चाह का त्याग करने में मानवमात्र स्वाधीन है।

प्रश्न- आसक्तिरहित होकर कार्य करने से क्या तात्पर्य है?

स्वामीजी- जिस कार्य को करने में अपना सुख निहित नहीं होता बल्कि जो सर्वहितकारी दृष्टि से किया जाता है, वह आसक्तिरहित कार्य कहलाता है।

प्रश्न- क्या शरीर छोड़ने से पहले शरीर से सम्बन्ध-विच्छेद करना सम्भव है?

स्वामीजी- हाँ, यह सम्भव है। यदि हम स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर अर्थात् तीनों शरीरों से सुख लेना छोड़ दें, तो तीनों ही शरीरों से (शरीरों के रहते हुए भी) सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है।

प्रश्न- स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर की परिभाषा बताइये?

स्वामीजी- यद्यपि यह प्रश्न जीवन से सीधे सम्बन्धित नहीं है फिर भी मानव-सेवा-संघ में तीनों शरीरों से असंग होने की बात कही जाती है, इसलिए इस पर प्रकाश डाला गया है। स्थूल शरीर के सम्बन्ध में किसी को कोई कठिनाई नहीं है। यह हाड़-माँस का पुतला है जो कि हमारी प्रतीति में आता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार आदि यह सूक्ष्म शरीर के अर्थ में आते हैं। जिससे हमें अपने होनेपन का भास होता है, उसे कारण शरीर कहते हैं। जैसे गहरी नींद में स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का कारोबार तो बन्द रहता है, परन्तु उठने के बाद ये अनुभव होता है कि 'मैं बड़ी गहरी नींद सोया।' यह अनुभव कारण शरीर के द्वारा ही होता है।

प्रश्न- विश्राम की उपलब्धि कैसे हो?

स्वामीजी- जो कर सकते हैं एवं जो करना चाहिये वह करके, करने के राग से रहित होकर विश्राम प्राप्त करें। प्रत्येक दशा में क्षोभ रहित होने से ही यथेष्ट विश्राम मिल सकता है। हम क्षोभरहित तभी हो सकते हैं जब हमारी दृष्टि वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदि के सतत् परिवर्तन पर लगी रहे; अर्थात् अनुकूलता तथा प्रतिकूलता सदैव नहीं रहेगी, यह अनुभूति जीवन बन जाए। अनुभूति के आदर के बिना साधन-निर्माण सम्भव नहीं है। इस कारण अनुभूति का आदर अत्यन्त अनिवार्य है, क्योंकि अनुभूति ही साधक के पथ-प्रदर्शन में हेतु है।

प्रश्न- विश्राम का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- विश्राम आलस्य नहीं है, अकर्मण्यता नहीं है। क्योंकि आलस्य और अकर्मण्यता से तो प्राणी व्यर्थ-चिन्तन तथा जड़ता में

आबद्ध हो जाता है और विश्राम व्यर्थ-चिन्तनरहित होने पर तथा जड़ता से अतीत होने पर ही सम्भव है। विश्राम वह जीवन है, जिससे सभी क्रियाएँ उदित होती हैं अथवा जिसमें सभी क्रियाएँ विलीन होती हैं; अर्थात् क्रियाशीलता का उद्गम-स्थान भी विश्राम है और उसका लयस्थान भी विश्राम ही है।

प्रश्न- वर्तमान दशा का अध्ययन कैसे किया जाए?

स्वामीजी- निज-विवेक के प्रकाश में अपनी उस रुचि को देखा जाए जो बीजरूप से विद्यमान है, और उस योग्यता को देखा जाए जिससे उसकी पूर्ति और निवृत्ति हो सकती है; क्योंकि विद्यमान रुचि की पूर्ति तथा निवृत्ति के बिना हम अपने वास्तविक जीवन को प्राप्त नहीं कर सकते। भुक्त और अभुक्त रुचियों के जाल में आबद्ध प्राणी परिवर्तनशील क्षण-भंगुर जीवन से मुक्त नहीं हो सकता।

प्रश्न- साधन-निर्माण की अपेक्षा ही क्यों है?

स्वामीजी- राग की निवृत्ति तथा जिज्ञासा की पूर्ति के लिए ही साधन की अपेक्षा है।

प्रश्न- हम क्या जान सकते हैं?

स्वामीजी- इन्द्रियों के द्वारा विषयों को और बुद्धि से शरीर तथा उससे सम्बन्धित वस्तु, अवस्था आदि के सतत परिवर्तन को जान सकते हैं।

प्रश्न- मानने का साधन-निर्माण में क्या स्थान है?

स्वामीजी- हम अपने को साधक मानकर ही साधन का निर्माण कर सकते हैं और साध्य को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न- त्याग और प्रेम से जीवन की सार्थकता कैसे सिद्ध होती है?

स्वामीजी- त्याग के बिना चिर-शान्ति नहीं मिलती और प्रेम के बिना अगाध-अनन्त रस की उपलब्धि नहीं हो सकती। चिर-शान्ति के बिना जीवन तथा सामर्थ्य की उपलब्धि नहीं होती और अगाध-अनन्त रस के बिना खिन्नता एवं नीरसता का अन्त नहीं हो सकता। खिन्नता तथा नीरसता का अन्त हुए बिना काम का अन्त नहीं होता और काम का अन्त हुए बिना जड़ता, परतन्त्रता, शक्तिहीनता आदि दोषों का अन्त नहीं हो सकता। अथवा यों कहो कि काम का अन्त हुए बिना अभाव का अभाव नहीं हो सकता। अभाव के अभाव में ही इस जीवन की सार्थकता है, जो त्याग और प्रेम से ही सम्भव है।

प्रश्न- अपने अधिकार का त्याग क्यों करना है?

स्वामीजी- इसलिए कि क्रोध की उत्पत्ति न हो।

प्रश्न- दूसरों के अधिकार की रक्षा क्यों करनी है?

स्वामीजी- इसलिये कि विद्यमान राग की निवृत्ति हो जाय।

प्रश्न- मुक्त कौन है?

स्वामीजी- जिसको जगत की अपेक्षा नहीं रहती।

प्रश्न- भक्त किसे कहते हैं?

स्वामीजी- जिसे मुक्ति का रस भी खारा लगे।

प्रश्न- संसार माने क्या?

स्वामीजी- संसार माने उत्पन्न हुई चीज।

प्रश्न- शरीर क्या है?

स्वामीजी- सृष्टि का एक छोटा-सा नमूना।

प्रश्न- देहातीत जीवन की प्राप्ति कैसे हो?

स्वामीजी- बुराई रहित होकर भलाई का फल छोड़ने से स्थूल शरीर और स्थूल जगत की आवश्यकता नहीं रहती और अचाह होने से

सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म जगत की आवश्यकता नहीं रहती और अप्रयत्न होने से कारण शरीर और कारण जगत की आवश्यकता नहीं रहती। चाहे यों कह दो कि स्थूल सूक्ष्म में, सूक्ष्म कारण में विलीन हो जाता है और फिर देहातीत जीवन की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न- समाधि एवं योग से क्या तात्पर्य है?

स्वामीजी- इन्द्रियों की शक्ति को मन में लय कर दो, मन की शक्ति को बुद्धि में लय कर दो। तो जब इन्द्रियाँ अविषय होंगी, मन निर्विकल्प होगा, बुद्धि सम होगी—इसे समाधि कह दो, योग कह दो।

प्रश्न- शुद्ध भौतिकवाद का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- अगर योग ही जीवन है, बोध और प्रेम की प्राप्ति न हो—तो यह शुद्ध भौतिकवाद है।

प्रश्न- आध्यात्म विज्ञान एवं आस्तिक विज्ञान क्या है?

स्वामीजी- बोध जो है यह आध्यात्म विज्ञान है और प्रेम आस्तिक विज्ञान है।

प्रश्न- योग की प्राप्ति का उपाय क्या है?

स्वामीजी- तीन तरह से योग की प्राप्ति हो जाती है। धर्मात्मा होने से, अचाह होने से और शरणागत होने से!

प्रश्न- योग, बोध, प्रेम की प्राप्ति कैसे हो?

स्वामीजी- अगर सुखमय जीवन है तो धर्मात्मा होना अनिवार्य है, अगर दु:खमय जीवन है तो अचाह होना अनिवार्य है, अगर आस्थामय जीवन है तो शरणागत होना अनिवार्य है। इनमें से किसी के द्वारा भी आप राग रहित होकर योग, बोध, प्रेम को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न- आस्था का क्या अर्थ है?

स्वामीजी- जिसने अपनी असमर्थता से पीड़ित होकर सर्वसमर्थ का आश्रय ले लिया।

प्रश्न- मोक्ष का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- मोक्ष का अर्थ दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति है।

प्रश्न- मोक्षार्थी और प्रेमार्थी में क्या भेद है?

स्वामीजी- जो मोक्षार्थी है वह विरक्त है भोग से, और जो प्रेमार्थी है वह मोक्ष से भी विरक्त है।

प्रश्न- अप्रयत्न क्यों नहीं हो पाते?

स्वामीजी- जीवन में करने का राग है इसलिये। अगर सेवा नहीं करोगे तो भोग करोगे, जब भोग करोगे तब अचाह नहीं हो सकोगे, तब अप्रयत्न नहीं हो सकोगे।

प्रश्न- स्वाधीन क्यों नहीं हो पाते?

स्वामीजी- जब तक देह के साथ मिले रहोगे पराधीन रहोगे, स्वाधीन नहीं हो सकते।

प्रश्न- प्रेम की शर्त क्या है?

स्वामीजी- प्रेम के लिये प्रभु को ही अपना मानना पड़ेगा। वे ही मेरे अपने हैं और कोई मेरा अपना नहीं है; और उनसे भी मुझे कुछ नहीं चाहिये। और यह भी मानना पड़ेगा कि अपने पर उनका पूरा अधिकार है।

प्रश्न- अपनी खोज कैसे हो?

स्वामीजी-शरीर के द्वारा, इन्द्रियों के द्वारा, मन-बुद्धि के द्वारा, प्राणों के द्वारा अपनी खोज नहीं हो सकती। इन सबसे अलग होने पर ही अपने द्वारा ही अपनी खोज हो सकती है।

प्रश्न- शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण इन सबसे अलग होने का उपाय क्या है?

स्वामीजी- सेवा करो और कुछ मत चाहो। क्योंकि अपने लिये कुछ करने की बात है नहीं।

प्रश्न- अपने लिये कुछ करने की बात है नहीं क्यों?

स्वामीजी- अपनी जो माँग है अमर जीवन की, स्वाधीन जीवन की, चिन्मय जीवन की - वह माँग किसी कर्म के द्वारा पूरी नहीं होगी।

प्रश्न- कर्म का सम्बन्ध किससे है?

स्वामीजी- एक होता है खोज करना, एक होता है उत्पन्न करना। कर्म का सम्बन्ध होता है उन चीजों से जो उत्पन्न होती हैं। 'यह' के सम्बन्ध में जो कुछ जरूरत होती है, उसके लिये कर्म किया जाता है। संसार के जितने कर्म हैं वे शरीर तक रहते हैं, 'मैं' तक नहीं पहुँचते।

प्रश्न- 'मैं' की खोज के लिये शर्त क्या है?

स्वामीजी- 'मैं' की खोज करने के लिये शरीर का आश्रय छोड़ना पड़ता है।

प्रश्न- शरीर का आश्रय कैसे छोड़ें?

स्वामीजी- शरीर का आश्रय छोड़ने के लिये सेवा करनी पड़ती है।

प्रश्न- सेवा का मतलब क्या है?

स्वामीजी- सेवा का मतलब यह है, जो काम आप करो उसमें दूसरों का हित होना चाहिये, उसका सम्बन्ध दूसरे के साथ होना चाहिये; अपने सुख में उसका उपयोग नहीं होना चाहिये।

प्रश्न- सेवा और भोग में भेद क्या है?

स्वामीजी- जिसमें दूसरे का हित निहित हो उसको सेवा कहते हैं, जिसमें अपना सुख हो उसे भोग कहते हैं।

प्रश्न- 'मैं' की खोज कैसे की जाय?

स्वामीजी- 'यह' से 'मैं' का सम्बन्ध तोड़ दिया जाय। 'यह' में मेरा कुछ नहीं है, 'यह' से मुझे कुछ नहीं चाहिये, 'यह' के द्वारा 'यह' की सेवा करनी है। 'यह' माने शरीर; शरीर के द्वारा संसार की सेवा करनी है। 'यह' माने संसार; संसार में मेरा कुछ नहीं है, संसार से मुझे कुछ नहीं चाहिये। मुझे अपने लिये कुछ करना नहीं है।

प्रश्न- योग क्या है?

स्वामीजी- जाग्रत अवस्था में ज्ञानपूर्वक न करने की जो स्थिति है, उसका नाम है 'योग'।

प्रश्न- जब हम शरीर नहीं हैं तो हम क्या हैं?

स्वामीजी- जाग्रत अवस्था में जब न करने की स्थिति आती है तो इस बात का बोध होता है कि हम किसी काल में भी शरीर नहीं हैं। न स्थूल शरीर हैं, न सूक्ष्म शरीर हैं और न कारण शरीर हैं। हम शरीर नहीं हैं-इस बात को शरीर से अलग होकर अनुभव करो कि हम शरीर नहीं हैं। शरीर से असंगता का अनुभव हमें उस जीवन से, उस सत्य से जिसका कभी नाश नहीं होता, अभिन्न कर देता है।

प्रश्न- 'मैं' का अन्तिम विकसित रूप क्या है?

स्वामीजी- वह योग है, बोध है और प्रेम है।

प्रश्न- योग परमात्मा के साथ होता है, कैसे?

स्वामीजी- 'न करने' की स्थिति को ही योग कहते हैं। लेकिन मैं ऐसा मानता हूँ कि 'न करने' की स्थिति में हमारा उससे योग होता है जो

अपना है, अपने में है और अभी है, अविनाशी है और समर्थ है; अद्वितीय है, एक ही है। तो, योग परमात्मा के साथ होता है।

प्रश्न- जीवन क्या है?

स्वामीजी- जगत की सेवा, खोज अपनी, प्रेम उनमें कीजिए- ये तीनों मिलकर एक जीवन है।

प्रश्न- असत् कार्य कौन सा कहलाता है?

स्वामीजी- जिसके मूल में अपने सुख का भोग रहता है। अपने सुख भोग की रुचि से की हुई प्रवृत्ति असत् कार्य कहलाती है।

प्रश्न- सत् कार्य कौन सा कहलाता है?

स्वामीजी- जिसके मूल में परहित रहता है। परहित के भाव से की हुई प्रवृत्ति सत् कार्य कहलाती है।

प्रश्न- त्याग का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- जो अपने से भिन्न है, उसकी हमें अपेक्षा न रहे। हम अपने में अपने जीवन का अनुभव करें।

प्रश्न- मनुष्य की मौलिक माँग क्या है?

स्वामीजी- हम अपने में अपने प्रेमास्पद को पा जायें। अपने में 'जीवन' पा जायें।

प्रश्न- रसरूप जीवन से अभिन्न कैसे हो सकते हैं।

स्वामीजी- जो अपने में है, वह कभी अपने से अलग नहीं होगा। अर्थात् 'योग' जो 'वियोग' से रहित है अगर हमें प्राप्त हो जाये तो हम बड़ी सुगमता पूर्वक अमर जीवन से, स्वाधीन जीवन से, रसरूप जीवन से अभिन्न हो सकते हैं।

प्रश्न- जीवन का सत्य क्या है?

स्वामीजी- संयोग का उपयोग है सेवा में, उसका फल है

त्याग। त्याग का फल है प्रेम। तो सेवा, त्याग, प्रेम यह जीवन का सत्य है।

प्रश्न- सेवा का वास्तविक स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- सर्वांश में बुराई रहित हो जायें अर्थात् बुराई न करें, तो वास्तविक सेवा स्वत: होगी।

प्रश्न- परमात्मा किसे कहते हैं?

स्वामीजी- जिससे हम कभी भी अलग न हो सकें अथवा जो हमसे कभी भी अलग न हो सके, उसका नाम परमात्मा है। जिसका 'अस्तित्व' है उसी का नाम परमात्मा है।

प्रश्न- अस्तित्व माने क्या?

स्वामीजी- जिसका कभी भी नाश नहीं होता।

प्रश्न- पूजा का क्या अर्थ है?

स्वामीजी- भगवद् सम्बन्ध से ओतप्रोत प्रवृत्ति।

प्रश्न- कर्त्तव्य का क्या अर्थ है?

स्वामीजी- जिसके अन्त में स्वत: विश्राम अर्थात् योग की प्राप्ति हो।

प्रश्न- पूजा और कर्त्तव्य में क्या भेद है?

स्वामीजी- भगवत् नाते किया हुआ कार्य भगवान की पूजा और विश्राम के लिये किया हुआ कार्य कर्त्तव्य कहलाता है।

प्रश्न- साधन किसे कहते हैं?

स्वामीजी- स्वाधीनता के लिये किये हुये कार्य को साधन कहते हैं।

प्रश्न- प्रेम कैसे प्राप्त हो?

स्वामीजी- आप सभी को अपना मानकर काम करें, आपको प्रेम प्राप्त होगा।

प्रश्न- जीवन में प्रसन्नता कैसे आये?

स्वामीजी- श्रमी, संयमी, विवेकी और प्रेमी - जब ये चारों बातें आ जाती हैं तब निरभिमानता भी आ जाती है। जब निरभिमानता आ जाती है तब समता भी आ जाती है। जब समता आ जाती है तो प्रसन्नता भी आ जाती है।

प्रश्न- शरीर से तादात्म्य कब होता है?

स्वामीजी- जब आप कुछ करते हैं तब! जब आप बोलते हैं तो वाणी से तादात्म्य होता है। जब आप सुनते हैं तो कानों से तादात्म्य होता है। जब आप सोचते हैं तो मस्तिष्क से तादात्म्य होता है। जब आप देखते हैं तो आँखों से तादात्म्य होता है।

प्रश्न- 'मैं' का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- 'मैं' माने उदार, 'मैं' माने स्वाधीन, 'मैं' माने प्रेमी। उदारता से 'मैं' जगत के लिये, प्रेम से प्रभु के लिये और स्वाधीनता से अपने लिये उपयोगी होता है। यह 'मैं' का स्वरूप है।

प्रश्न- पराधीन कौन रहता है?

स्वामीजी- चाहने वाला हमेशा पराधीन रहता है।

प्रश्न- उदार और प्रेमी कौन?

स्वामीजी- जिसे कुछ नहीं चाहिये वही उदार है और वही प्रेमी है।

प्रश्न- विश्राम क्यों नहीं मिलता? विश्राम का महत्व क्या है?

स्वामीजी- जगत का अस्तित्व मानकर अगर आप सेवा नहीं करेंगे तो विश्राम नहीं मिलेगा। अपना अस्तित्व मानकर अगर आप अचाह और अकिंचन नहीं होंगे तो विश्राम नहीं मिलेगा। परमात्मा का अस्तित्व मानकर अगर आप शरणागत नहीं होंगे तो विश्राम नहीं

मिलेगा। जब तक विश्राम नहीं मिलेगा तब तक स्वाधीनता और प्रेम का उदय नहीं होगा।

प्रश्न- हम सही अर्थों में साधक कब होते हैं?

स्वामीजी- जब तक हम अपने सत्य को स्वीकार नहीं करेंगे तब तक कितना भी सत्कार्य कर लें, कितना ही सत्चर्चा कर लें, कितना ही सत् चिन्तन कर लें सही अर्थों में हमारी साधक संज्ञा सिद्ध नहीं होगी।

प्रश्न- अचाह कैसे हों?

स्वामीजी- ईमानदारी से इस सत्य को स्वीकार कर लिया कि संसार में मेरा कुछ नहीं है। तो अचाह हो जाओगे।

प्रश्न- अपना क्या नहीं है?

स्वामीजी- जो सदा के लिये नहीं हैं वह अपने लिये नहीं है। जो सदैव नहीं है सो अपना नहीं है। जो अपने में नहीं है सो अपना नहीं है।

प्रश्न- राग का नाश कैसे हो?

स्वामीजी- दूसरों का अधिकार देने से राग का नाश होता है।

प्रश्न- क्रोध का नाश कैसे हो?

स्वामीजी- अपना अधिकार छोड़ने से क्रोध का नाश होता है।

प्रश्न- स्वाधीन कैसे हों?

स्वामीजी- मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए—इन दो बातों को मानकर हम स्वाधीन हो सकते हैं।

प्रश्न- आध्यात्मिक विकास किसे कहते हैं?

स्वामीजी- किसी प्रकार की पराधीनता शेष न रहे तो यह आध्यात्मिक विकास कहलाता है। तब शरीर के रहते ही जीवन्मुक्ति का आनन्द आता है।

प्रश्न- परमात्मा किसे कहते हैं?

स्वामीजी- परमात्मा अपना है, अपने में है, अभी है, एक ही है, अद्वितीय है और समर्थ है—यह जिसकी महिमा है उसी को परमात्मा कहते हैं।

प्रश्न- ईश्वरवाद की साधना की पूर्णता क्या है?

स्वामीजी- अपना होने से परमात्मा प्यारा लगना चाहिये। अभी होने से मिला हुआ होना चाहिये। अपने में होने से नित्य-प्राप्त होना चाहिये। अपने को उनके प्रेम तत्व से अभिन्न होने की आनन्दमयी अनुभूति होनी चाहिये।

प्रश्न- परमात्मा सभी को मिल सकते हैं, कैसे?

स्वामीजी- जो बिना परिश्रम के मिलता है उसी का नाम परमात्मा है। परिश्रम करने में सब व्यक्ति बराबर नहीं हो सकते, परन्तु परमात्मा को अपना मानने में सब बराबर हो सकते हैं। अत: परमात्मा सभी को मिल सकते हैं। यह बात आपमें दृढ़ हो जाये तो परमात्मा से मिलने की उत्कण्ठा तीव्र हो जायेगी।

प्रश्न- कामना से छुटकारा कैसे मिले?

स्वामीजी- जब परमात्मा की माँग सबल हो जाती है तो फिर कोई कामना शेष नहीं रहती।

प्रश्न- हमारी स्वाधीनता किसमें है?

स्वामीजी- ज्ञान के द्वारा आप मुक्त हो जाइये, विश्वास के द्वारा आप भक्त हो जाइये। इसमें आपकी स्वाधीनता है।

प्रश्न- संसार से मन कैसे हटे?

स्वामीजी- संसार को नापसन्द कर दो तो उससे मन हट जायेगा।

प्रश्न- परमात्मा में मन कैसे लगे?

स्वामीजी- परमात्मा को पसन्द कर लो तो उसमें मन लग जायेगा।

प्रश्न- साधन की सिद्धि कब होती है।

स्वामीजी- जब हम अपनी दृष्टि में इतने ईमानदार हो जायें कि जाने हुए असत् से सम्बन्ध न रहे। उसमें विश्वास न रहे। उसकी कामना न रहे। उसकी ममता न रहे। उसका दुरुपयोग न रहे।

प्रश्न- विश्राम कब मिलता है?

स्वामीजी- जब असत् की कामना न रहे।

प्रश्न- असत् किसे कहते हैं?

स्वामीजी- जिससे आपका नित्य-सम्बन्ध न रहे।

प्रश्न- साधन निर्माण कैसे हो?

स्वामीजी- साधन निर्माण सत्संग के बिना किसी प्रकार हो नहीं सकता।

प्रश्न- साधन का असली अर्थ तथा साधन निर्माण क्या है?

स्वामीजी- साधन का असली अर्थ ही यह है कि जिसकी अभिव्यक्ति साधक में से हो। और वह साधन साधक को साधन-तत्व से अभिन्न करने में समर्थ हो जाये। इसका नाम है साधन निर्माण।

प्रश्न- ज्ञान के प्रकाश से तात्पर्य क्या है?

स्वामीजी- किसी पोथी का सीखा नहीं, किसी गुरु का बताया हुआ नहीं, किसी का सुनाया हुआ नहीं वरन् स्वयं जो ज्ञान आपको प्राप्त है।

प्रश्न- असहयोग का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- किसी से द्वेष नहीं, किसी को बुरा समझना नहीं। असहयोग का अर्थ है - सम्बन्ध विच्छेद।

प्रश्न- अविवेक क्या है?

स्वामीजी- अविवेक विवेक का अनादर है और कुछ नहीं।

प्रश्न- चित्त शुद्ध और शान्त क्यों नहीं होता?

स्वामीजी- चित्त कभी शुद्ध और शान्त नहीं हो सकता, जब तक कि हम अपने दोषों को, अपने विकारों को चित्त में आरोप करते रहेंगे।

प्रश्न- नित्य योग, बोध और प्रेम में क्या भेद है?

स्वामीजी- नित्य योग सामर्थ्य का प्रतीक है, बोध जीवन का प्रतीक है और प्रेम रस का प्रतीक है।

प्रश्न- भेद का नाश होने से क्या होगा?

स्वामीजी- जब भेद का नाश होगा तब अपने आप प्रेम की अभिव्यक्ति होगी।

प्रश्न- योग का भोग नहीं करेंगे, तब क्या होगा?

स्वामीजी- जब हम और आप आये हुए योग का भोग नहीं करेंगे तो योग जो स्वभाव से गतिशील है वह हमें पराधीनता से स्वाधीनता की ओर ले जायेगा, जड़ता से चिन्मयता की ओर ले जायेगा, अभाव से पूर्णता की ओर ले जायेगा और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जायेगा। योग का भोग न करने से चिन्मय-दिव्य जीवन की प्राप्ति होगी।

प्रश्न- योग क्या है?

स्वामीजी- कामना की निवृत्ति।

प्रश्न- भोग क्या है?

स्वामीजी- कामना के अनुरूप प्रवृत्ति।

प्रश्न- मूक-सत्संग क्या है?

स्वामीजी- न देखने से, न सुनने से, न बोलने से, न सोचने से जिसका संग होता है वह है-मूक सत्संग।

प्रश्न- व्यर्थ चिन्तन का नाश कैसे हो?

स्वामीजी- अचिन्त होने से, अर्थात् किसी प्रकार का चिन्तन न करने से।

प्रश्न- पूजा का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- भगवत् सम्बन्ध से ओतप्रोत प्रवृत्ति।

प्रश्न- कर्तव्य का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- जिसके अन्त में स्वत: चिर-विश्राम अर्थात् योग की प्राप्ति हो।

प्रश्न- पूजा और कर्त्तव्य में क्या भेद है?

स्वामीजी- भगवत् नाते किया हुआ कार्य भगवान की पूजा और विश्राम के लिये किया गया कार्य कर्त्तव्य कहलाता है।

प्रश्न- साधन किसे कहते हैं?

स्वामीजी- स्वाधीनता के लिये किये गये कार्य को साधन कहते हैं।

प्रश्न- राग निवृत्ति कैसे हो?

स्वामीजी- प्रवृत्ति काल में दूसरों के काम आयें, निवृत्ति काल में अचाह हो जायें तो प्रवृत्ति से तो विद्यमान राग की निवृत्ति होगी और अचाह होने से नवीन राग पैदा नहीं होगा। अत: हम राग-रहित हो जायेंगे।

प्रश्न- सृष्टि का आधार और सृष्टि का प्रकाशक कौन है?

स्वामीजी- जो सभी का अपना है, जो सदा के लिये अपना है, जिससे कभी वियोग हो ही नहीं सकता; वह जो हमारा अपना है वह सृष्टि का आधार है।

प्रश्न- साधक का स्वधर्म व परम पुरुषार्थ क्या है?

स्वामीजी- अपना करके संसार में कुछ नहीं है। अपने को जगत के प्रति उदार होना है, प्रभु के प्रति प्रेमी होना है। जिसके प्रति उदार होना है उससे भी कुछ नहीं चाहिए और जिसके प्रति प्रेमी होना है उससे भी कुछ नहीं चाहिए। यह साधक का स्वधर्म है, परम पुरुषार्थ है।

प्रश्न- साधक के लिए सबसे आवश्यक, मूल्यवान, अनिवार्य क्या है?

स्वामीजी- यही सत्य कि मेरा कुछ नहीं है। जब मेरा कुछ नहीं है तो मुझे कुछ नहीं चाहिए- यह बात अपने आप आ जायेगी। जब ये दोनों बात आ गयीं तो यह बात भी आ जायेगी अपने आप कि प्रभु अपने हैं, अपने में हैं और अभी हैं। यह निर्विवाद सत्य है।

प्रश्न- आध्यात्मिक जीवन क्या है?

स्वामीजी- अचाह होकर अपने में सन्तुष्ट होना।

प्रश्न- आस्तिक जीवन क्या है?

स्वामीजी- प्रेमी होकर प्रेमास्पद को पाना।

प्रश्न- सुख भोग से अरुचि कैसे हो?

स्वामीजी- सुख का भोग एक भयंकर दु:ख में आबद्ध करता है। यह बात अगर समझ में आ जाये तो सुख भोग से अरुचि हो जायेगी।

प्रश्न- परिस्थिति से तादात्म्य कैसे टूटेगा?

स्वामीजी- परिस्थिति के सदुपयोग करने से।

प्रश्न- परिस्थिति का सही सदुपयोग क्या है?

स्वामीजी- सुख में सेवा और दु:ख में त्याग अपनायें।

प्रश्न- परिस्थितियों से अतीत जो जीवन है उसकी प्राप्ति कैसे हो?

स्वामीजी- परिस्थितियों से तादात्म्य टूटने से, परिस्थितियों की कामना छूटने से!

प्रश्न- जीवन का सत्य क्या है?

स्वामीजी- काम आओ और कुछ न चाहो - यह जीवन का ध्रुव सत्य है, अखण्ड सत्य है। इस सत्य को स्वीकार करना ही होगा।

प्रश्न- अचाह होने से क्या मिलेगा?

स्वामीजी- अचाह होने से स्वाधीनता मिलेगी, निर्विकारता मिलेगी, जीवन-मुक्ति मिलेगी।

प्रश्न- दूसरों के काम आने से क्या मिलेगा?

स्वामीजी- दूसरों के काम आने से आपको अचाह होने की शक्ति मिलेगी; क्योंकि दूसरों से काम लेने से नवीन चाह पैदा होती है।

प्रश्न- रागरहित होने से क्या होगा?

स्वामीजी- रागरहित होने से योग का आनन्द मिल सकता है, आत्मा का आनन्द मिल सकता है, परमात्मा का आनन्द मिल सकता है।

प्रश्न- हमारी आसक्ति क्यों नहीं मिटती?

स्वामीजी- इसलिये नहीं मिटती कि हमने वास्तविक आवश्यकता का अनुभव नहीं किया और उसमें आस्था नहीं रखते कि यह पूर्ण हो जायेगी।

प्रश्न- दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति, जीवन मुक्ति, भगवद् भक्ति कैसे मिले?

स्वामीजी- माँग अनुभव करो, त्याग अपने आप आ जायेगा। माँग अनुभव करने से संसार का सम्बन्ध टूट ही जाता है। संसार का सम्बन्ध टूटने से दु:खों की अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है और जीवन मुक्ति मिल ही जाती है, भगवद् भक्ति मिल ही जाती है।

प्रश्न- संसार का सम्बन्ध कैसे टूटता है?

स्वामीजी- संसार का सम्बन्ध टूटता है ज्ञान से और सेवा से। जिससे राग है, उनकी सेवा करो, बाकी ज्ञानपूर्वक अचाह हो जाओ।

प्रश्न- सबसे बड़ा सुख किसे मिलता है?

स्वामीजी- सबसे बड़ा जो सुख है, वह उसी को मिलता है, जो साधु (साधक) हो जाता है।

प्रश्न- शरणागति का तात्पर्य क्या है?

स्वामीजी- शरणागति का मतलब होता है उनका हो जाना। 'हे प्रभु मैं तेरा हूँ'-यह पहला स्टेज है शरणागति का। 'तुम मेरे हो'-यह आखिरी स्टेज है। शरणागति का फल है - 'तुम ही हो'।

प्रश्न- सबसे ऊँचा जीवन कौन सा होता है?

स्वामीजी- जिसका कभी नाश न हो और जो सभी के लिये उपयोगी हो। योग का कभी नाश नहीं होता, बोध का कभी नाश नहीं होता और प्रेम का कभी नाश नहीं होता।

प्रश्न- हम फँसे किसमें हैं?

स्वामीजी- भोग में, मोह में और आसक्ति में।

प्रश्न- जीवन की सभी समस्याएँ हल कैसे हों?

स्वामीजी- अगर हम शरीर को जगत की मर्जी पर छोड़ दें और अपने को प्रभु की मर्जी पर, तो जीवन की जितनी समस्याएँ हैं वे सब हल हो सकती हैं।

प्रश्न- दुनिया में बड़ा आदमी कौन होता है?

स्वामीजी- जो दूसरों की जरूरत को अपनी जरूरत मानता है। जिसके सभी संकल्प प्रभु के संकल्प में अथवा जगत के संकल्प में विलीन हो गये हैं, वह दुनिया का बड़ा आदमी है।

प्रश्न- जीवन का सत्य क्या है?

स्वामीजी- जिसके हृदय में परपीड़ा होती है, उसके जीवन में सुख भोग की रूचि नहीं रहती। यह जीवन का सत्य है।

प्रश्न- संकल्प का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- वह जो वस्तु से, व्यक्ति से, परिस्थिति एवं अवस्था से सम्बन्ध जोड़ दे।

प्रश्न- साधन का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- साधन उसे कहते हैं कि जिसके अपना लेने पर साध्य से दूरी, भेद और भिन्नता न रहे। वह श्रम साध्य उपाय से उदित नहीं होता। साधन जीवन के सत्य को स्वीकार करने से स्वतः उदय होता है। उदारता, स्वाधीनता, प्रियता साधन हैं।

प्रश्न- जीवन में उदारता, प्रियता, स्वाधीनता कैसे आये?

स्वामीजी- अगर आप किसी-न-किसी नाते सभी को अपना मान लें तो जीवन में उदारता आ जायेगी। अगर आप प्रभु को अपना मान लें तो प्रियता आ जायेगी। अगर अपना करके कुछ न मानें तो स्वाधीनता आ जायेगी।

प्रश्न- समाज में आदर कौन पाता है?

स्वामीजी- जो आदर के योग्य हो जाता है, और आप जानते हैं कि जो आदर के योग्य हो जाता है उसमें आदर की वासना नहीं रहती।

प्रश्न- आदर के योग्य कौन है?

स्वामीजी- जिसमें छः बातें हों- योग्य हो, ईमानदार हो, परिश्रमी हो, उदार हो, स्वाधीन हो और प्रेमी हो।

प्रश्न- योग्यता का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- योग्यता का अर्थ है कि समाज के किसी भी कार्य के लिये हम उपयोगी हो जायें।

प्रश्न- कार्य कुशलता कैसे आये?

स्वामीजी- जब किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत ममता कुछ नहीं रहती। या तो सभी अपने हैं अथवा कोई अपना नहीं है तो उसका भाव पवित्र हो जाता है। उसमें कार्य कुशलता आ जाती है, वह विधि से कार्य करता है।

प्रश्न- स्वाधीनता और प्रेम कैसे मिले?

स्वामीजी- अगर आपके अन्दर यह विश्वास हो जाये कि मैं सही काम करूँगा तो मुझे विश्राम मिलेगा। विश्राम मिलेगा तो जीवन मिलेगा और जीवन मिलेगा तो स्वाधीनता और प्रेम मिलेगा।

प्रश्न- कार्य किसलिये किया जाता है?

स्वामीजी- काम किया जाता है आराम के लिये और आराम होता है अपने लिये, क्योंकि विश्राम में जीवन है। विश्राम में ज्ञान का प्रकाश और प्रेम का रस है। इसलिये हमको विश्राम चाहिये। विश्राम किसी परिस्थिति से नहीं मिलता।

प्रश्न- हमें सही कार्य करना क्यों नहीं आता?

स्वामीजी- हम सभी को अपना नहीं मानते इसलिये।

प्रश्न- हम अचाह क्यों नहीं हो पाते?

स्वामीजी- अपना करके किसी भी काल में कुछ है ही नहीं-हम यह नहीं मान पाते इसलिए।

प्रश्न- अखण्ड स्मृति क्यों नहीं जगती?

स्वामीजी- सर्वसमर्थ प्रभु अपने हैं, यह भी नहीं मान पाते। नहीं तो अखण्ड स्मृति जग जाती।

प्रश्न- आज हमारे और परमात्मा के बीच में दूरी, भेद और भिन्नता क्यों है?

स्वामीजी- विस्मृति से। अगर स्मृति जाग्रत हो जाये तो दूरी का भी नाश हो जाए, भेद का भी नाश हो जाय और भिन्नता का भी नाश हो जाय।

प्रश्न- प्रभु विश्वास से क्या होगा?

स्वामीजी- विश्वास का काम है सम्बन्ध जोड़ना। अगर हम प्रभु में विश्वास करेंगे तो हमारा प्रभु से सम्बन्ध हो जायेगा और सम्बन्ध का काम है स्मृति को जगा देना।

प्रश्न- मानसिक रोगों से छुटकारे का उपाय क्या है?

स्वामीजी- जो प्रभु में विश्वास करता है उसके जीवन में अन्य विश्वास नहीं रहता। जब अन्य विश्वास नहीं रहता तो अन्य सम्बन्ध कैसे रहेगा? जब अन्य सम्बन्ध नहीं रहेगा तो अन्य चिन्तन कैसे रहेगा? और जब अन्य चिन्तन नहीं रहेगा तो मानसिक रोग कैसे होंगे?

प्रश्न- संसार की ममता कैसे छूटे?

स्वामीजी- जब मनुष्य यह मान लेता है, जो कुछ है सब प्रभु का है, तो उसमें संसार की ममता रहेगी क्या?

प्रश्न- प्रभु स्मृति कैसे जगती है?

स्वामीजी- स्मृति है स्वधर्म और वह केवल आत्मीय सम्बन्ध से जाग्रत होती है। आत्मीय सम्बन्ध के बिना स्मृति कभी जाग्रत नहीं

होती। जो प्रभु से सम्बन्ध जोड़ते हैं, वह सबसे पहले क्या मानते हैं? यह जो कुछ है, सारी सृष्टि प्रभु की है—ऐसा मानते हैं।

प्रश्न- परमात्मा सर्वत्र कैसे मालूम हो?

स्वामीजी- 'सब कुछ प्रभु का है'-ऐसा जब मान लेता है आदमी तो वह ममता से रहित हो जाता है, कामना से रहित हो जाता है। और, जो ममता और कामना से रहित हो जाता है उसे निर्विकारता और शान्ति नहीं मिलेगी? और, जब निर्विकारता और शान्ति जीवन में आ जायेगी तो चित्त शुद्ध और शान्त नहीं होगा? और, जब चित्त शुद्ध और शान्त हो जाता है तब, उसको जो परमात्मा कहीं दूर मालूम होता था वह सर्वत्र मालूम होने लगता है।

प्रश्न- अकिंचन और अचाह कैसे हो?

स्वामीजी- अगर आप इस सत्य को अनुभव कर लेते कि सृष्टि की स्वतन्त्र स्थिति नहीं है तो अकिंचन और अचाह हो जाते।

प्रश्न- चित्त शुद्ध और शान्त कैसे हो?

स्वामीजी- जो आदमी केवल इतना मान लेता है कि संसार में व्यक्तिगत कुछ नहीं है और मुझे कुछ नहीं चाहिये, उसका चित्त शुद्ध और शान्त हो जाता है।

प्रश्न- दृश्य से सम्बन्ध कैसे टूटे?

स्वामीजी- जिसके जीवन में सुख भोग का प्रलोभन नहीं रहता है उसका दृश्य से सम्बन्ध टूट जाता है।

प्रश्न- चित्त शुद्धि का उपाय क्या है?

स्वामीजी- जब अकिंचन और अचाह हो जाते हैं तो चित्त शुद्ध और शान्त हो जाता है। देखो! चित्त की शुद्धि मेरा कुछ नहीं है—इस बात से होती है। यह चित्त शुद्धि का सबसे बड़ा उपाय है।

प्रश्न- परमात्मा में मन कैसे लगे?

स्वामीजी- परमात्मा अपना है, अपने में है, अभी है, सब कुछ उन्हीं का है, मुझे उनसे कुछ नहीं चाहिये। क्यों नहीं चाहिये? जब परमात्मा ही अपना है तो अपने को चाहिये क्या? अरे भाई! मालिक जिसका अपना है, उसको मिल्कियत में से भी कुछ चाहिये क्या? मालिक को जो पसन्द कर लेगा, मिल्कियत उसके पीछे-पीछे दौड़ेगी। उसे मिल्कियत से क्या मतलब! इस तरह से परमात्मा में चित्त लग जाता है।

प्रश्न- मन अमन कैसे हो?

स्वामीजी- परमात्मा को अपना मानने से और सब कुछ प्रभु का है, यह मानने से और मुझे कुछ नहीं चाहिये, यह मानने से। मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, सब कुछ प्रभु का है; यह मानने से परमात्मा में मन लग जाता है। और, जब परमात्मा में मन लग जाता है तब मन अमन हो जाता है, अमन यानी मन नहीं रहता—बे मन का, मनरहित। जब मन रहित है तो वहाँ चिर शान्ति है, वहाँ जीवन्मुक्ति है। इसलिये भाई, परमात्मा को अपना मानना बहुत बड़ी चीज है।

प्रश्न- मनुष्य के विकास का पहला कदम क्या है?

स्वामीजी- मनुष्य के विकास का पहला कदम है कि भाई, हमें दूसरों के दु:ख से दु:खी होना चाहिये, तब उसके हृदय में करुणा का रस प्रवाहित होता है और जब दूसरों के सुख से प्रसन्न होते हैं तो प्रसन्नता का रस बहता है। करुणा और प्रसन्नता हमारी निजी निधि होनी चाहिये। करुणा का रस जब तक नहीं आयेगा, सुख-भोग की रुचि मिटेगी नहीं। प्रसन्नता का रस जब तक नहीं आयेगा, तब तक कामनायें नाश होंगी नहीं। इसलिये हृदय करुणा और प्रसन्नता से भरना चाहिये।

प्रश्न- सत्य क्या है?

स्वामीजी- परपीड़ा से पीड़ित होना सत्य है। अचाह होना सत्य है। भगवान का आश्रय लेकर शरणागत होना सत्य है।

प्रश्न- भोग, मोह और आसक्ति की निवृत्ति कैसे हो?

स्वामीजी- जब हम सत्य को स्वीकार कर लेंगे तो भोग, मोह और आसक्ति की निवृत्ति स्वयं हो जायेगी।

प्रश्न- मनुष्य के विकास का अन्तिम कदम क्या है?

स्वामीजी- भोग की रुचि और काम का जब नाश हो जाता है, तब जीवन्मुक्ति का आनन्द आता है। भोग-रुचि नाश हुई तो योग प्राप्त हो गया या काम नाश हुआ तो राम प्राप्त हो गया। जब योग और बोध प्राप्त हो जाता है तब स्वत: प्रेम और प्रेमास्पद का नित्यविहार होने लगता है। इसी बिहार की माँग मनुष्य की अपनी माँग है। हमारा अस्तित्व प्रेम से भिन्न कुछ न रह जाये, हमारा अस्तित्व बोध और योग से भिन्न कुछ न रह जाये। भोग, मोह, आसक्ति की अत्यन्त निवृत्ति हो जाये और योग, बोध, प्रेम की प्राप्ति हो जाये।

प्रश्न- भयंकर दु:ख से बचना हो तो क्या करें?

स्वामीजी- सुख का भोग मत करो।

प्रश्न- सत्य को स्वीकार करने में बाधा क्या है?

स्वामीजी- परिस्थिति के आश्रय को लेकर जो हम सुख भोगते हैं, उसका प्रलोभन हमें सत्य को स्वीकार करने नहीं देता। परिस्थिति का सहयोग कह दो, चाहे दार्शनिक भाषा में दृश्य का सहयोग कह दो। दृश्य के सहयोग से जो हम सुख का भोग करते हैं, यही हमारा एक ऐसा प्रमाद है कि जो हमें सत्य को स्वीकार करने नहीं देता। यद्यपि सुख के भोगी को भयंकर दु:ख भोगना ही पड़ता है और जब तक वह सुख

का भोग करता रहेगा, तब तक उसे अनन्त काल तक दुःख ही भोगना पड़ेगा। केवल जड़ता में लय होने मात्र से दुःख की मात्रा कुछ घटेगी, पर मिटेगी नहीं।

प्रश्न- साधक अविनाशी जीवन से अभिन्न कैसे होता है?

स्वामीजी- जब साधक की दृष्टि दृश्य से विमुख होकर अपने उद्गम में विलीन हो जाती है, तब वह अपने में सन्तुष्ट होकर एक अविनाशी जीवन से अभिन्न होता है।

प्रश्न- राजयोग किसे कहते हैं?

स्वामीजी- 'राजयोग' में दो बातें प्रधान हैं कि दृष्टि बिना दृश्य के स्थिर हो जाये, चित्त बिना आधार के शान्त हो जाये। तब क्या होता है- कि प्राण बिना निरोध के सम हो जाता है अर्थात् योग प्राप्त हो जाता है। इसी को 'राजयोग' कहते हैं। राजयोग में प्राणों पर दबाब नहीं डाला जाता, शरीर पर दबाबा नहीं डाला जाता, बल्कि मन का सुधार किया जाता है, अपनी रुचि को बदला जाता है।

प्रश्न- मन के सुधार का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- मन कोई बिगड़ता थोड़े ही है, मन रुचि के अधीन रहता है। अगर हम अपनी रुचि बदल दें तो मन बदल जाता है।

प्रश्न- योगवित्, आत्मवित् और ब्रह्मवित् कैसे हो?

स्वामीजी- दृश्य के आश्रय से उत्पन्न होने वाला सुख यदि हमें नापसन्द हो जाये तो हम बड़ी सुगमतापूर्वक योगवित् हो जायें और योगवित् होने से आत्मवित् होने की सामर्थ्य आ जाये और आत्मवित् होने से ब्रह्मवित् हो जायें। इन तीनों में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि योगवित्, आत्मवित् हो ही जायेगा। पर एक सावधानी रखनी पड़ेगी कि योग का जो बाह्य रूप है, बाह्य फल है भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्तियों का प्रादुर्भाव

होना। साधक अगर उन शक्तियों का भोग नहीं करेगा तो आत्मवित् हो जायेगा।

प्रश्न- योग का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- योग तो वास्तव में एक प्रकार से भौतिक विज्ञान है। योग का जो बाह्य रूप है, वह भौतिक विज्ञान है। भौतिक विज्ञान की चरम सीमा योग में ही जाकर होती है। जैसे कि अलौकिक शक्तियों का प्राप्त हो जाना, कामनापूर्ति की सामर्थ्य का आ जाना इत्यादि। यद्यपि योग का जो उत्तर पक्ष है, वह कामना-निवृत्ति की प्रेरणा देता है। पूर्व पक्ष जो है, वह कामना-पूर्ति की दिव्य शक्तियों के उपयोग की प्रेरणा देता है; यानि वे शक्तियाँ योग से प्राप्त होती हैं। परन्तु हमें अपने लिये किसी प्रकार के दृश्य का सहयोग नहीं चाहिये। अगर यह बात दृढ़ता के साथ हम पसन्द कर लें तो वियोग का भय भी जाता रहेगा और नित्य योग भी प्राप्त हो जायेगा। यह योग का उत्तर पक्ष है—नित्य-योग का प्राप्त हो जाना। योग से मिली हुई शक्तियों का भोग करना—यह योग का पूर्व पक्ष है।

प्रश्न- अलग कौन होता है?

स्वामीजी- जो अलग है, वही अलग होगा।

प्रश्न- मिलता कौन है?

स्वामीजी- जो मिला है। जो अलग नहीं है, वही तो मिलेगा। दृश्य से अतीत जो स्वत:सिद्ध तत्व है, वह कभी किसी से अलग नहीं है। अत: उसी की प्राप्ति होगी और समस्त दृश्य चूंकि भिन्न है, इसलिये अलग होगा। अभिन्न नहीं है, इसलिये अलग होगा ही।

प्रश्न- हमें जो चाहिये, हमारा जो अपना है, उसके हमारे बीच में भिन्नता क्यों है, उसका नाश कैसे हो?

स्वामीजी- यह विस्मृति की भिन्नता है, भूलजनित भिन्नता है, स्वरूप से भिन्नता नहीं है। हमें जो चाहिये वह हम में ही है, हम उसी में हैं। स्वरूप से हम एक दूसरे से अलग नहीं हैं। चाहे आप एक का नाम 'जीव' और दूसरे का नाम 'ब्रह्म' रख लीजिये, हमें इसमें कोई आपत्ति नहीं है। इनमें स्वरूप से भिन्नता नहीं है, विस्मृति की भिन्नता है, भूलजनित भिन्नता है। जब हम दृश्य से विमुख हो जाते हैं, तो वह भूलजनित भिन्नता है वह नाश हो जाती है।

प्रश्न- साध्य किसे कहते हैं?

स्वामीजी- जो सभी का आराध्य है।

प्रश्न- सभी का आराध्य कौन है?

स्वामीजी- जिसे पाकर फिर कुछ और पाना शेष नहीं रहता, वही सभी का आराध्य है।

प्रश्न- साध्य से हमारा क्या सम्बन्ध है?

स्वामीजी- साध्य से हमारी जातीय एकता है, नित्य सम्बन्ध है और आत्मीय सम्बन्ध है।

प्रश्न- भोग की रुचि का नाश कैसे हो?

स्वामीजी- मिले हुए शरीर के द्वारा परिवार की, समाज की, संसार की सेवा करनी है; भोग नहीं करना है। इससे भोग की रुचि नाश हो जायेगी।

प्रश्न- सेवा क्या है?

स्वामीजी- सेवा में दूसरे का हित निहित होता है, भोग में अपना सुख निहित होता है। तो हम अपने सुख के लिये मिली हुई वस्तुरूपी शरीर का, योग्यता का, सामर्थ्य का उपयोग न करें। अपितु परहित में मिले हुए शरीर का, योग्यता का, सामर्थ्य का उपयोग करें।

प्रश्न- जीवन में पूर्णता कैसे आयेगी?

स्वामीजी- सेवा और त्याग से आपको प्रेम तत्त्व की प्राप्ति होगी और प्रेम तत्व की प्राप्ति से ही आपके जीवन में पूर्णता होगी।

प्रश्न- मौजूद परमात्मा अप्राप्त और अप्राप्त संसार प्राप्त—ऐसा हमको जो लगता है, इसका क्या कारण है?

स्वामीजी- हमने अपनी ही भूल से जो अपना है उसे अपना मानना बन्द कर दिया, और जो अपना नहीं है उसे अपना मान लिया।

प्रश्न- अपना क्या नहीं है?

स्वामीजी- जो सदैव हमारे साथ नहीं रह सकता अथवा सदैव हम जिसके साथ नहीं रह सकते, वह अपना नहीं है।

प्रश्न- परमात्मा किसे नहीं कहा गया?

स्वामीजी- परमात्मा उसे नहीं कहा गया, जो सर्व देश में, सर्वकाल में, सर्वत्र और सभी का न हो।

प्रश्न- हमारा भगवान में नित्यवास कैसे हो?

स्वामीजी- हम केवल परमात्मा को अपना मान लें और सब प्रकार से उसी के होकर रहें और उन्हीं के नाते सबसे सद्भाव रखें, तो यह निर्विवाद सत्य है कि हमारा उन्हीं में नित्यवास होगा।

प्रश्न- जो दिखाई न दे और उसे अपना मानें तो क्या होगा?

स्वामीजी- वह अनदेखा जो देखने में नहीं आता, वह सदा के लिये अनदेखा नहीं रहेगा। जो दूर मालूम होता था, वह प्राप्त मालूम होगा। उस न दिखने वाले प्रभु से दूरी न रहैगी, भेद भी नहीं रहेगा, भिन्नता भी नहीं रहेगी। दूरी मिट जाती है तो उसका नाम योग हो जाता है, भेद मिट जाता है तो उसका नाम बोध हो जाता है और भिन्नता मिट जाए तो उसका

नाम प्रेम हो जाता है। अर्थात् हम सभी को योग, बोध और प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न- सेवा करें और अपना न मानें तो क्या होगा?

स्वामीजी- सेवा करने से निर्विकारता प्राप्त होगी और निष्काम तथा असंग होने की सामर्थ्य आ जाएगी।

प्रश्न- अच्छा लगना सदा रह सकता है क्या?

स्वामीजी- जो अच्छा लगता है वह हमेशा नहीं रहता।

प्रश्न- जो अच्छा लगता है पर रहता नहीं। जब नहीं रहता तब क्या होता है?

स्वामीजी- चित्त दु:खी हो जाता है, निराश हो जाता है, अनेक प्रकार की मानसिक पीड़ाएँ होने लगती हैं।

प्रश्न- हमारा इतना पुराना साथी चला गया। बड़े परिश्रम से वस्तु प्राप्त की थी, चली गई। इस तरह की एक व्यथा हृदय में जगती है। इस व्यथा की निवृत्ति हो जाए, इसके लिए उपाय क्या है?

स्वामीजी- जिसके साथ सदैव नहीं रह सकते, जो हमारे साथ सदैव नहीं रह सकता उसे हम अपना न मानें। अगर वस्तु है तो उसका सदुपयोग करो। अगर कोई व्यक्ति है, साथी है तो उसकी सेवा करो। पर भाई मेरे, अगर जँच जाए बात तो उसे अपना मत मानो। न वस्तु को, न व्यक्ति को! वस्तु में अपना शरीर भी आता है।

प्रश्न- वस्तु, व्यक्ति को अपना न मानने से क्या होगा?

स्वामीजी- इतनी ही बात से हममें एक दैवी शक्ति आएगी और उसके आने से निर्विकारता भी प्राप्त होगी और निष्काम तथा असंग होने की सामर्थ्य आ जाएगी।

प्रश्न- निर्ममता प्राप्त कैसे हो?

स्वामीजी- मिली हुई वस्तु को मिले हुए व्यक्तियों को बुरा न समझें। उनके साथ दुर्व्यवहार न करें, सद्व्यवहार करें। मिली हुई वस्तु को बुरा न समझें। उसका दुरुपयोग न करें, सदुपयोग करें। तब हमें निर्ममता प्राप्त होगी।

प्रश्न- हमें निर्लोभता और निर्मोहता कैसे प्राप्त हो?

स्वामीजी- जब निर्ममता प्राप्त होगी तब वस्तुओं के संग्रह की तो रुचि जाती रहेगी और व्यक्तियों के साथ मोह का नाश हो जाएगा। मोह नहीं रहेगा। अर्थात् हमें निर्लोभता और निर्मोहता प्राप्त होगी।

प्रश्न- निर्मोहता प्राप्त होने से क्या होगा?

स्वामीजी- निर्मोहता आ जाय तो फिर कोई भय नहीं रहता।

प्रश्न- दरिद्रता न रहे इसका उपाय क्या है?

स्वामीजी- जीवन का विज्ञान हमें यह प्रत्यक्ष करके दिखा देता है कि अगर हमारे जीवन में निर्लोभता आ जाय तो दरिद्रता नहीं रहती।

प्रश्न- दरिद्रता मिटने का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- दरिद्रता मिटने का अर्थ यह है कि आवश्यक कार्य पूरा हो जाएगा, आवश्यक वस्तु अवश्य मिल जाएगी। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप करोड़पति हो जायेंगे या आपके पास बहुत सी सम्पत्ति हो जायेगी!

प्रश्न- भय रहित जीवन से तात्पर्य क्या है?

स्वामीजी- जिसके जीवन में मोह नहीं रहता उसके जीवन में भय नहीं रहता। निर्भयता जब प्राप्त होती है तो उसमें एक बड़ा अलौकिक रस मालूम होता है। बड़ी अपूर्व प्रसन्नता मालूम होती है। भयभीत जीवन में सदैव ही खिन्नता, नीरसता और अभाव रहता है। भय-रहित जीवन में

अभाव नहीं रहता, नीरसता नहीं रहती, खिन्नता नहीं रहती–ऐसा मेरा विश्वास और अनुभव है।

प्रश्न– किसे अपना मानें?

स्वामीजी– गुरुवाणी से हमने सुना है, वेदवाणी से हमने सुना है कि वह जो इन्द्रियों की सीमा में न आने वाला, बुद्धि की सीमा में न आने वाला परमात्मा है—मन-वाणी को अगम-अगोचर अविगत, अकथ, अपार। जो बुद्धि से परे परमात्मा हैं भाई! केवल उसको अपना मान लो।

प्रश्न– परमात्मा को अपना मानने में हम लोगों को क्या कठिनाई मालूम होती है?

स्वामीजी– जिसे देखा नहीं है उसे अपना मान लेना—यह बड़े साहस की बात है।

प्रश्न– स्वधर्म क्या है?

स्वामीजी– स्वधर्म अर्थात् जीवन का सत्य। यह जीवन का सत्य है कि सेवा करें और अपना न मानें और दिखाई न दे और उसे अपना मानें।

प्रश्न– परमात्मा किसे कहते हैं?

स्वामीजी– परमात्मा कहते ही उसको हैं जो नित्य-प्राप्त हो। जो कभी मिले और कभी अलग हो जाए, उसका नाम परमात्मा नहीं होता। किसी को मिले, किसी को न मिले उसका नाम परमात्मा नहीं होता। कहीं हो और कहीं न हो, उसका नाम परमात्मा नहीं होता। परमात्मा उसी का नाम है जो सभी का हो, सदैव हो, सर्वत्र हो।

प्रश्न– हम परमात्मा से दूरी अनुभव क्यों कर रहे हैं?

स्वामीजी– जो सभी का है वह अपना नहीं है क्या? सदैव है तो

अभी नहीं है क्या? सर्वत्र है तो अपने में नहीं है क्या? पर हम उसे अपना नहीं मानते इसलिए उससे दूरी अनुभव कर रहे हैं।

प्रश्न- मिला हुआ शरीर, साथी, सामान हमें प्राप्त नहीं है क्या?

स्वामीजी- मिले हुए शरीर को, मिले हुए साथियों को, मिले हुए सामान को हम अपना मानते हैं। इसलिए उनकी समीपता का अनुभव कर रहे हैं, उनकी प्राप्ति अनुभव कर रहे हैं। वास्तव में इनकी प्राप्ति है नहीं।

प्रश्न- हमारा शरीर अभी तो मौजूद है, छूटेगा तब छूट जायेगा।

स्वामीजी- अरे बाबा! छूटा है!! मौजूद दिखता है, है नहीं।

प्रश्न- 'मैं' का और 'यह' का सम्बन्ध कैसे मालूम होता है?

स्वामीजी- 'मैं' का और 'यह' का कभी सम्बन्ध हुआ नहीं। ममता के कारण 'मैं' का और 'यह' का सम्बन्ध मालूम होता है।

प्रश्न- हमें परमात्मा से दूरी मालूम होती है क्यों?

स्वामीजी- परमात्मा से कभी दूरी हुई नहीं, आत्मीयता के अभाव से दूरी मालूम होती है।

प्रश्न- हृदय की शान्ति के लिए दु:ख की अत्यन्त निवृत्ति के लिए, नीरसता और अभाव मिटाने के लिए हम क्या करें?

स्वामीजी- मिले हुए को अपना न मानें और प्रभु को अपना मानें।

प्रश्न- अपना अगर कोई हो सकता है तो कौन है?

स्वामीजी- केवल परमात्मा ही हो सकता है और कोई अपना नहीं हो सकता।

प्रश्न- वस्तु, योग्यता सामर्थ्य का उपयोग क्या है?

स्वामीजी- वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य का भोग करोगे तो मोह और आसक्ति में आबद्ध हो जाओगे।

प्रश्न- ज्ञान का क्या प्रभाव होता है?

स्वामीजी- ज्ञान का कोई भी प्रभाव हो सकता है तो यही हो सकता है कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए। इसी को मानव-सेवा-संघ की प्रणाली में 'सत्संग' कहते हैं।

प्रश्न- साधना क्या है?

स्वामीजी- साधना जो होती है उसमें सत्ता साध्य की ही होती है, साधक की नहीं होती। यानी साध्य का ही एक रूप है जिसे साधना कहते हैं और उसी साधना से हम साधकों की अभिन्नता होती है। अत: साधना में सत्ता साध्य की होती है इस दृष्टि से हम सबका जीवन एक उस अलौकिक तत्त्व को प्राप्त कर सकता है जहाँ केवल अद्वैत है और कुछ नहीं।

प्रश्न- अद्वैत से क्या तात्पर्य है?

स्वामीजी- अद्वैत माने और काई नहीं है और कुछ नहीं है, केवल अद्वैत। अद्वैत शब्द का अर्थ हमारे गुरु महाराज प्रेम बताया करते थे। अद्वैत शब्द का अर्थ सन्त लोग बोध बताया करते हैं और योगी लोग योग बताया करते हैं। योग में अद्वैत है, बोध में अद्वैत है, प्रेम में अद्वैत है।

प्रश्न- सेवा कैसे करें?

स्वामीजी- आप परमात्मा को मानने वाले हो तो परमात्मा के नाते सेवा करो और आत्मा को मानने वाले तो आत्मा के नाते सेवा करो और जगत् के मानने वाले हो तो जगत् के नाते सेवा करो।

प्रश्न- सेवा करने से हमें क्या मिलेगा?

स्वामीजी- जिसकी तुम सेवा करोगे उसका तुम्हें प्रेम मिलेगा। तुम्हें मिलेगा विश्व प्रेम, आत्मरति और प्रभु प्रेम!

प्रश्न- मनुष्य का पुरुषार्थ क्या है?

स्वामीजी- अगर कोई मिलने वाला तत्त्व है तो वह प्रेम है और करने वाला तत्त्व है तो सेवा है अथवा तीसरी चीज त्याग है-अचाह होना, मेरा कुछ नहीं। तो सेवा-त्याग-प्रेम ही तो मनुष्य का पुरुषार्थ है!

प्रश्न- अपना किसे मानें? और कैसे मानें?

स्वामीजी- केवल प्रभु को ही अपना मानें। वे चाहे जहाँ हों, चाहे कुछ करें। मिलें चाहे न मिलें, कुछ परवाह नहीं। हम अपना मानेंगे तो केवल प्रभु को ही अपना मानेंगे और किसी को अपना मानेंगे नहीं।

प्रश्न- अलौकिक जीवन क्या है?

स्वामीजी- जो जीवन कभी भी, किसी भी महामानव को मिला है। जिसमें केवल रस है, न सुख है न दु:ख।

प्रश्न- क्या हम केवल सुख-दु:ख भोगने के लिए ही पैदा हुए हैं?

स्वामीजी- सुख-दु:ख का उपयोग करने के लिए पैदा हुए हैं।

प्रश्न- सुख-दु:ख जीवन में क्या प्रेरणा देता है?

स्वामीजी- अगर हमारे जीवन में सुख आया है तो वह सेवा की प्रेरणा देता है। दु:ख आया है तो वह त्याग की प्रेरणा देता है।

प्रश्न- प्रेम कैसे प्राप्त होता है?

स्वामीजी- प्रेम दो ही चीजों से प्राप्त होता है- सेवा से और त्याग से; और किसी प्रकार प्रेम प्राप्त नहीं होता। प्रेम तभी प्राप्त होता है-सेवा करो या त्याग करो।

प्रश्न- त्याग माने क्या? सेवा माने क्या?

स्वामीजी- त्याग माने अचाह होना। सेवा माने सभी के लिए उपयोगी होना, सभी में सद्भाव रखना।

प्रश्न- साध्य किसे कहते हैं?

स्वामीजी- साध्य उसे कहते हैं जिसकी प्राप्ति में विकल्प न हो, सन्देह न हो, निराशा न हो उसको साध्य कहते हैं। जिसकी प्राप्ति में विकल्प है, सन्देह है वह साध्य नहीं कहलाता।

प्रश्न- किस चीज की प्राप्ति में विकल्प नहीं होता?

स्वामीजी- जो सदा हो और सभी के लिए हो, उसकी प्राप्ति में विकल्प नहीं होता।

प्रश्न- हमारा साध्य क्या वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, अवस्था नहीं हो सकती?

स्वामीजी- हमारा साध्य कोई वस्तु नहीं हो सकती, कोई व्यक्ति नहीं हो सकता, कोई परिस्थिति नहीं हो सकती, कोई अवस्था नहीं हो सकती। क्योंकि यह तो सबके लिए होती नहीं और सदा के लिए रहती नहीं!

प्रश्न- निष्काम होने में कठिनाई क्या होती है?

स्वामीजी- हम निर्मम नहीं होते।

प्रश्न- निर्विकारता, शान्ति और स्वाधीनता की प्राप्ति कैसे हो?

स्वामीजी- अगर हम निर्मम हो जाएँ तो निष्काम होने की शक्ति आ जाए और निष्काम हो जाएँ तो असंग होने की शक्ति आ जाए। और, जब ये तीनों चीजें- निर्ममता, निष्कामता, असंगता आ जाती हैं तो निर्विकारता, शान्ति और स्वाधीनता भी प्राप्त हो जाती है।

प्रश्न- विवेक का अनादर क्या है?

स्वामीजी- जब हम अपने साध्य को ही भूल जाते हैं और सुख-सुविधा-सम्मान को पसन्द कर लेते हैं या उसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं—सुख की, सुविधा की, सम्मान की। तब विवेक का

अनादर कर बैठते हैं सुख के लिए, सुविधा के लिए, सम्मान के लिए। अप्राप्त वस्तु का, अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन करते हैं तो यह विवेक का अनादर करना हुआ।

प्रश्न- सृष्टि का आकर्षण न रहे, इसका उपाय क्या है?

स्वामीजी- हमें जो चाहिए वह वस्तु के आश्रित नहीं हैं, व्यक्ति के आश्रित नहीं हैं, किसी परिस्थिति के आश्रित नहीं हैं और सारी सृष्टि में वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति के सिवाय कुछ नहीं है। अर्थात् हमें जो चाहिए वह सृष्टि के आश्रित नहीं हैं। तब हमारी दृष्टि में अपने लिए सृष्टि का आकर्षण रह सकता है क्या?

प्रश्न- इन्द्रियों का अविषय होना, मन का निर्विकल्प होना बुद्धि का सम होना- ये हमारे लिये कैसे सम्भव है?

स्वामीजी- जब सृष्टि का आकर्षण नहीं रहता तब इन्द्रियाँ अविषय हो सकती हैं कि नहीं? जब इन्द्रियाँ अविषय होती हैं तब मन निर्विकल्प हो सकता है कि नहीं? और जब मन निर्विकल्प होता है तब बुद्धि सम हो सकती है कि नहीं?

प्रश्न- अभ्यास की किसके लिए जरूरत है?

स्वामीजी- जो शरीर से साध्य है, जो योग्यता से साध्य है, जो सामर्थ्य से साध्य है उसके लिये अभ्यास चाहिए। लेकिन जो बात ज्ञान से सिद्ध है जो बात विश्वास से साध्य है, उसके लिये अभ्यास की अपेक्षा नहीं होगी।

प्रश्न- चैन नहीं मिलता क्यों?

स्वामीजी- हमें जो सेवा-सामग्री प्राप्त है उसके द्वारा सेवा करते नहीं, उसके द्वारा करते हैं भोग। जब हम सेवा सामग्री को भोग-सामग्री बना देते हैं तो उसी का परिणाम यह होता है कि हम मोह में और आसक्ति

में आबद्ध हो जाते हैं। मोह में आबद्ध होने से और आसक्ति में आबद्ध होने से चैन नहीं मिलता।

प्रश्न- हम सेवा के बदले में शरीर को अमर बनाना चाहते हैं, सेवा के बदले में हम सर्व-दु:खों की निवृत्ति करना चाहते हैं—यह हो सकता है क्या?

स्वामीजी- नहीं हो सकता।

प्रश्न- सेवा के द्वारा हम क्या कर सकते हैं?

स्वामीजी- सेवा के द्वारा हम सुख-भोग की रुचि का नाश कर सकते हैं।

प्रश्न- योग कैसे प्राप्त होगा?

स्वामीजी- जब भोग की रुचि का नाश होगा तब आपको स्वत: योग प्राप्त होगा।

प्रश्न- कर्मयोग किसे कहते हैं?

स्वामीजी- सेवा से भोग की रुचि का नाश होगा और भोग की रुचि के नाश होने से हमको योग प्राप्त होगा और योग प्राप्त होने से बोध और प्रेम प्राप्त होगा। इसी को कर्मयोग कहते हैं। इसी को कर्त्तव्य-पथ भी कहते हैं।

प्रश्न- भोग की रुचि के नाश का उपाय क्या है?

स्वामीजी- विचार के द्वारा अथवा शरणागति के द्वारा भी भोग की रुचि का नाश होता है।

प्रश्न- योग, बोध, प्रेम की प्राप्ति के पथ क्या हैं?

स्वामीजी- कर्त्तव्य-पथ, विचार-पथ, विश्वास-पथ! इन तीनों पथों से योग बोध प्रेम की प्राप्ति होती है।

प्रश्न- योग प्राप्ति का साधन क्या है?

स्वामीजी- कर्त्तव्य-पथ से जिस योग की प्राप्ति होती है उसी योग की प्राप्ति विचार-पथ से होती है। उसी योग की प्राप्ति विश्वास-पथ से होती है।

प्रश्न- योग का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- जो सदा है, सर्वदा है, सर्वत्र है, उसके साथ मिलना; उसके साथ मिलन का नाम योग होता है।

प्रश्न- भोग का क्या अर्थ है?

स्वामीजी- जो कभी है, कभी नहीं है; कहीं है, कहीं नहीं है-उसके साथ मिलने से भोग होता है। जो कहीं है, कहीं नहीं है-वह तो आपके जानने में आता ही है।

प्रश्न- परमात्मा जानने में नहीं आता क्यों?

स्वामीजी- जो सदैव, सर्वत्र है वह आपके जानने में नहीं आता, वह सुनने में आता है। कोई कहता है परमात्मा सदैव है, सर्वत्र है, सभी का है, समर्थ है और अद्वितीय है। तो यह जो विश्वास है आपका कि परमात्मा सभी का होने से अपना है, सदैव होने से अभी है, सर्वत्र होने से अपने में है, समर्थ है, अद्वितीय है—यही साधन है।

प्रश्न- विश्वास का अनादर क्या है?

स्वामीजी- परमात्मा से भिन्न को अपना मानना बन्द नहीं किया।

प्रश्न- विचार का अनादर क्या है?

स्वामीजी- जो सदा के लिए नहीं है क्या उसको आपने नापसन्द कर दिया-नहीं। तो आपने विचार का अनादर कर दिया।

प्रश्न- कर्त्तव्य-पथ का अनादर क्या?

स्वामीजी- जो दूसरों के लिए हैं उसको आपने दूसरों की सेवा में नहीं लगाया। तो यह कर्त्तव्य-पथ का अनादर कर दिया।

प्रश्न- कर्त्तव्य-पथ की सिद्धि क्या है?

स्वामीजी- मन-वाणी-कर्म से बुराई रहित होने पर कर्त्तव्य-पथ सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न- विचार-पथ की सिद्धि क्या है?

स्वामीजी- मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, मुझे अपने लिए कुछ नहीं करना है—इस बात के मानने से विचार-पथ सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न- विश्वास-पथ की सिद्धि क्या है?

स्वामीजी- प्रभु से भिन्न कोई और अपना है नहीं, हो सकता नहीं, होगा नहीं—इस बात को मानने से विश्वास-पथ सिद्ध हो जाता है।

प्रश्न- धर्मात्मा, कर्त्तव्यनिष्ठ कैसे बनें?

स्वामीजी- मन, वाणी, कर्म से बुराईरहित होने का व्रत आपको धर्मात्मा बना देगा, कर्त्तव्य-निष्ठ बना देगा।

प्रश्न- ज्ञान योगी कैसे बनें?

स्वामीजी- ज्ञान-पूर्वक निर्मम निष्काम होने का व्रत आपको ज्ञानयोगी बना देगा।

प्रश्न- विश्वास-पथ के साधक कैसे बनें?

स्वामीजी- श्रद्धा-विश्वास पूर्वक प्रभु के अस्तित्व को, महत्व को स्वीकार करने का व्रत आपको विश्वास-पथ का साधक बना देगा।

प्रश्न- जीवन्मुक्त कैसे हो?

स्वामीजी- मेरा कुछ नहीं है-यह जान लिया तो जीवन्मुक्त हो गए।

प्रश्न- भक्त कैसे हों?

स्वामीजी- प्रभु अपने हैं-यह मान लिया तो भक्त हो गये।

प्रश्न- मानव-मात्र का अपना लक्ष्य क्या है?

स्वामीजी- योग-बोध-प्रेम की प्राप्ति ही मानव-मात्र का अपना लक्ष्य है।

प्रश्न- योग किसे चाहिये?

स्वामीजी- भौतिक विज्ञानी हो, भौतिकवादी हो-अगर ईमानदार है तो योग से इन्कार नहीं कर सकता।

प्रश्न- बोध किसे चाहिये?

स्वामीजी- कोई आध्यात्मवादी हो, तो बोध से इन्कार नहीं कर सकता।

प्रश्न- प्रेम किसे चाहिये?

स्वामीजी- आस्थावान हो तो प्रेम से इन्कार नहीं कर सकता।

प्रश्न- योग, बोध, प्रेम किसका प्रतीक है?

स्वामीजी- योग जो है वह सामर्थ्य और शान्ति का प्रतीक है। बोध जो है यह जीवन का प्रतीक है। और प्रेम जो है वह रस का प्रतीक है।

प्रश्न- सभी के लिए योग, बोध, प्रेम अभीष्ट है कैसे?

स्वामीजी- योग के बिना सामर्थ्य और शान्ति नहीं मिलती, बोध के बिना अमरत्व प्राप्त नहीं होता। प्रेम के बिना रस-रूप जीवन की अभिव्यक्ति नहीं होती। मानव होने के नाते जो जीवन का सत्य है वह सबको अभीष्ट है।

प्रश्न- कामना के सम्बन्ध में कुछ बतायें?

स्वामीजी- कामना के सम्बन्ध में यह कहना बिल्कुल यथार्थ है कि सभी कामनाएँ पूरी नहीं होती और हर कामना-पूर्ति का सुख नवीन कामना को जन्म देता है; अथवा जो कामना-पूर्ति में रमण करता है उसे

कामना-पूर्ति का अभाव सहना ही पड़ता है। कामना परिवर्तनशील, गतिशील, अभावरूप दृश्य से सम्बन्ध जोड़ती है।

प्रश्न- माँग के सम्बन्ध में मार्गदर्शन करें?

स्वामीजी- माँग पूरी होने से अभाव नहीं रह सकता। क्योंकि माँग उससे हमारा सम्बन्ध जोड़ देती है, उससे अभिन्न कर देती है जो सदा ही सब प्रकार से पूर्ण है। जो अभाव और पराधीनता से रहित हैं, नीरसता से रहित है। यानी माँग उस अविनाशी-अनन्त तत्त्व से सम्बन्ध जोड़ती है, जो कभी भी दृश्य नहीं है अथवा समस्त दृश्य का प्रकाशक और आधार है। यह दृश्य भी उसी के आश्रय से प्रतीत हो रहा है। अगर उसका आश्रय न हो तो दृश्य की प्रतीति नहीं हो सकती।

प्रश्न- गुरु किसे कहते हैं?

स्वामीजी- गुरु उसे नहीं कहते जो हर चीज सिखाता फिरे। गुरु एक ऐसे सत्य का बोध करा देते हैं जिसको अपनाने से सब कुछ अपने आप आ जाता है।

प्रश्न- यह सब कुछ उन्हीं का है—इसका अर्थ क्या हुआ?

स्वामीजी- मेरा नहीं है, किसी गैर का नहीं है तो यह जो कुछ है वह प्यारा लगता है।

प्रश्न- मनुष्य का जीवन कैसा हो?

स्वामीजी- यह मनुष्य का अपना जीवन है कि वह दृश्य के प्रभाव से मुक्त भी हो और दृश्य के प्रति सद्भाव और सहयोग भी रखे।

प्रश्न- साधननिष्ठ होने का सुगम उपाय क्या है?

स्वामीजी- इस गुरु वाक्य पर ध्यान दो कि, 'सब कुछ उन्हीं का है। वे सबमें हैं, सबसे परे भी है। वास्तव में वे ही हैं और कुछ है ही नहीं,

होगा नहीं, हो सकता नहीं।' उन्हीं से हमारा 'मैं' योग होकर, बोध होकर, प्रेम होकर अभिन्न हो सकता है। यह जीवन का सत्य है। अगर आप चाहें तो इस सत्य को स्वीकार कर बड़ी सुगमतापूर्वक साधननिष्ठ हो जायें।

प्रश्न- मानव किसे कहते हैं?

स्वामीजी- मानव उसे नहीं कहते जो जगत् और जगदाधार को प्यारा न लगे। 'सर्व-प्रिय' मानव का ही नाम है। मानव जगत् को भी प्यारा लगता है क्योंकि उदार होता है, स्वाधीन होता है और परमात्मा को भी प्यारा लगता है क्योंकि प्रेमी होती है। इसलिए मानव माने जो सभी को प्यारा लगे। ऐसा जीवन जो सभी के लिए प्रिय है मानव-मात्र को अभीष्ट है और मिल सकता है।

प्रश्न- मानव के गुण क्या हैं?

स्वामीजी- तीन गुण मानव में होते हैं। मानव में यह ईश्वर-प्रदत्त होते हैं, परमात्मा में स्वरूपजन्य होते हैं। मानव उदार है तो हमारे प्रभु परम उदार हैं। मानव स्वतन्त्र है तो प्रभु परम स्वतंत्र है। मानव प्रेमी है तो प्रभु प्रेम के भण्डार हैं। जैसे, देखो न! एक लहर में जो जल होता है तो सागर में भी तो जल ही होता है। सागर में कोई ऐसी चीज नहीं होती जो लहर में नहीं है। लेकिन लहर में जहाज नहीं चलता, सागर में चलता है। इतना ही फर्क है। मानव में और परमात्मा में कोई अगर भेद स्थापित करे तो- 'स्वरूप की एकता' गुणों की भिन्नता- ऐसा है। और किसी के मन में कोई बात उठती हो? देखो! लहर और सागर में जल ही जल है; जल न लहर है न सागर है। ऐसे ही सत्ता रूप में परमात्मा ही परमात्मा है। चाहे उसको ईश्वर कहो, चाहे मत कहो। परमात्मा को परमात्मा न कहने से भी परमात्मा ही प्राप्त होता है।

प्रश्न- दुनियाँ का सबसे बड़ा आदमी कौन?

स्वामीजी- दुनियाँ का सबसे बड़ा आदमी वह होता है जो अपनी दृष्टि में जैसा है वैसा ठीक-ठीक अनुभव कर ले। दूसरों की दृष्टि में अच्छा कहलाना कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है। लेकिन हम अपनी दृष्टि में कैसे हैं, यह देखने की बात है।

प्रश्न- शरीर का क्या महत्व है?

स्वामीजी- शरीर की जातीय एकता है संसार के साथ। इसलिए शरीर के द्वारा आप किसी-न-किसी सत्-कार्य को ही कर सकते हैं, परमात्मा को, ब्रह्म को नहीं पकड़ सकते। यह शरीर ब्रह्म-प्राप्ति का साधन नहीं है। यह शरीर संसार की सेवा का साधन है।

प्रश्न- संसार की सेवा कब होगी?

स्वामीजी- जब आप उदार हों।

प्रश्न- उदार कब होंगे?

स्वामीजी- जब प्रभु के नाते सबको अपना मानें; और उदार होने के लिए कोई विशेष योग्यता नहीं चाहिए।

प्रश्न- हम स्वाधीन कब होंगे?

स्वामीजी- अगर आप इस बात को मानें कि मेरा और संसार का कोई सम्बन्ध ही नहीं है तो आप स्वाधीन हो सकते हैं।

प्रश्न- हम प्रेमी कब हो सकते हैं?

स्वामीजी- प्रभु से मेरा नित्य-सम्बन्ध है, आत्मीय-सम्बन्ध है- तो आप प्रेमी हो सकते हैं।

प्रश्न- मूल में सत्य क्या है?

स्वामीजी- मूल में सत्य तो तीन ही बातें हैं- संसार से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, प्रभु से मेरा नित्य सम्बन्ध है और; शरीर और संसार में अविभाज्य सम्बन्ध है, मेरा सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न- शरीर के द्वारा संसार के काम आते हैं कैसे?

स्वामीजी- बुराई रहित होकर। और कोई उपाय नहीं है काम आने का। मन से, वाणी से, कर्म से जो बुराई-रहित होगा, वह अपने आप संसार के काम आ जाएगा।

प्रश्न- संसार को क्या चाहिए?

स्वामीजी- संसार को जो चाहिए, वह यही एक चीज चाहिए कि उसको ऐसा साथी चाहिए जिसमें बुराई न हो।

प्रश्न- बुराई क्या है?

स्वामीजी- जो सुख का लोलुप हो। सुख लोलुप को कहते हैं बुरा। बुराई का मूल है सुख-लोलुपता। मनुष्य अपनी सुख-लोलुपता से प्रेरित होकर ही दुराचार करता है, व्यभिचार करता है, चोरी करता है, बदमाशी करता है, संग्रह करता है। यानी जितने दोष पैदा होते हैं सब सुख-लोलुपता से पैदा होते हैं। और यह सुख-लोलुपता जो है यह पशुता है, यह मानवता नहीं है। जैसे एक पशु अपने सुख के लिए ही जीता है, वह नहीं जानता दूसरे का हित किसे कहते हैं।

प्रश्न- सुख-लोलुपता का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- पराधीनता को सहन करना। हम यदि किसी प्रकार की भी पराधीनता सहन करते हैं तो यह सुख-लोलुपता है।

प्रश्न- पराधीनता को सहन कौन करता है?

स्वामीजी- जो सभी के लिए उदार नहीं होता, जो स्वाधीन नहीं होता, जो प्रेमी नहीं होता।

प्रश्न- समाज की माँग क्या है?

स्वामीजी- समाज की माँग है कि हम मन से, कर्म से, वाणी से

बुराई-रहित हों। जिससे कि हम भले हो जाएँ। भले होने से हमसे भलाई होने लगेगी। यही समाज की माँग है।

प्रश्न- भलाई कब होती है?

स्वामीजी- भलाई करके कोई भला नहीं होता, वरन् भला होकर भलाई करता है—यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। पहले हम भले होंगे, पीछे हमसे भलाई होगी।

प्रश्न- आसक्ति क्या है?

स्वामीजी- आसक्ति प्रेम का दूषित रूप है। अन्तर इतना होता है कि प्रेम में तो प्रिय को रस देने की बात होती है और आसक्ति में अपने सुख लेने की बात होती है।

प्रश्न- भला होकर ही मनुष्य पराधीन होता है, बुरा होकर पराधीन नहीं होता कैसे?

स्वामीजी- जो लोग भले हो जाते हैं उनके द्वारा भलाई होने लगती है। भलाई होने पर समाज की ओर से उनके प्रति जो सम्मान आता है, आदर आता है, सुविधा आती है उसको वे भोग करने लगते हैं। जिससे वे फिर पराधीन हो जाते हैं।

प्रश्न- मानव-सेवा-संघ माने क्या?

स्वामीजी- मानव-सेवा-संघ माने साधकों का संघ। मानव-सेवा-संघ कोई व्यक्तियों का संघ थोड़े ही है अथवा किसी वर्ग का, किसी मत और सम्प्रदाय का संघ थोड़े ही है!

प्रश्न- साधक कौन होता है?

स्वामीजी- जो भला हो, स्वाधीन हो, प्रेमी हो अथवा भले होने के लिए, स्वाधीन होने के लिए, प्रेमी होने के लिए अथक प्रयत्नशील हो।

प्रश्न- भले कैसे हों?

स्वामीजी- की हुई बुराई को दुहराओ मत, जानी हुई बुराई करो मत। लो! हो गए भले।

प्रश्न- स्वाधीन कैसे हों?

स्वामीजी- अपना वही है जो अपने में है और अपने से भिन्न जो कुछ है वह अपना नहीं है। अपने से भिन्न की आवश्यकता अनभुव मत करो, स्वाधीन हो गए।

प्रश्न- प्रेमी कैसे हों?

स्वामीजी- अपने में हैं-श्रीहरि। अपने में अपने हरि हैं। इसलिए वे अपने को प्यारे लगने लगते हैं।

प्रश्न- शास्त्र और गुरु कब फल देते हैं?

स्वामीजी- शास्त्र और गुरु तब फल देता है जब उसमें श्रद्धा हो।

प्रश्न- शास्त्र अध्ययन का अधिकारी कौन है?

स्वामीजी- शास्त्र अध्ययन का अधिकारी वही है जिसको शास्त्र में विकल्प-रहित आस्था हो।

प्रश्न- अपने को देखने का मतलब क्या है?

स्वामीजी- अपने को देखने का मतलब यह है कि अगर प्रेम नहीं है तो मान लो कि आसक्ति है। अगर स्वाधीनता नहीं है तो मान लो कि पराधीनता है। अगर उदारता नहीं है तो मान ही लो कि स्वार्थ-भाव है।

प्रश्न- मनुष्य स्वाधीन, उदार, प्रेमी कैसे होगा?

स्वामीजी- स्वाधीन होगा अचाह होने से, उदार होगा सभी को अपना मानने से और प्रेमी होगा प्रभु को अपना मानने से।

प्रश्न- ज्ञान किसे कहते हैं?

स्वामीजी- ज्ञान क्या उसे कहते हैं जो कभी घटे और कभी बढ़े? जो कभी रहे, कभी भूल जाए!

प्रश्न- क्या कारण है कि भगवान मौजूद है और प्यारा नहीं लगता?

स्वामीजी- हमने सही अर्थ में परमात्मा के अस्तित्व को, महत्व को, अपनत्व को स्वीकार नहीं किया। इसलिए परमात्मा प्यारा नहीं लगता।

प्रश्न- संसार की स्थिति नहीं है प्रतीति है, फिर भी वह प्यारा लगता है।

स्वामीजी- सही अर्थ में हमने-संसार की स्थिति नहीं है-इस बात का ठीक-ठीक अनुभव नहीं किया।

प्रश्न- हमने बुराई क्यों नहीं छोड़ी?

स्वामीजी- धर्मात्मा होना अनिवार्य है—इस बात को हमने स्वीकार नहीं किया। इसलिये बुराई नहीं छोड़ी।

प्रश्न- निर्दोष कैसे हो?

स्वामीजी- भाई, की हुई बुराई को न दुहराओ तो निर्दोष हो जाओगे।

प्रश्न- धर्मात्मा, स्वाधीन, प्रेमी कैसे हो?

स्वामीजी- इस क्षण से कोई बुराई नहीं करूँगा-धर्मात्मा हो गए। अब मैं इच्छा-पूर्ति का सुख नहीं चाहता हूँ-स्वाधीन हो गए। मैं आज से परमात्मा को अपना मानूँगा-प्रेमी हो गए।

प्रश्न- आज हमारे हृदय में उदारता नहीं है स्वार्थ-भाव है, सुख लोलुपता है तो क्यों है?

स्वामीजी- इसलिए है कि हमने सभी को अपना नहीं माना अथवा इसलिए है कि हम स्वाधीन नहीं हुए अथवा हम प्रेमी नहीं हुए।

प्रश्न- पराधीनता क्या है?

स्वामीजी- कामना-पूर्ति का सुख हमको अच्छा लगता है-यही तो पराधीनता है।

प्रश्न- अपना कौन?

स्वामीजी- मानव की जातीय एकता परमात्मा के साथ है। जिसके साथ हमारी जातीय एकता होती है, उसी के साथ नित्य-सम्बन्ध भी होता है और जिसके साथ नित्य-सम्बन्ध होता है, वही अपना होता है।

प्रश्न- व्यर्थ-चिन्तन का नाश कैसे होता है?

स्वामीजी- किसी प्रकार का चिन्तन न करने से अर्थात् अचिन्त होने से। हमारे न चाहते हुए भी जो चिन्तन हो रहा है उसका प्रभाव स्वीकार न करें अर्थात् उससे अहसहयोग रखें।

प्रश्न- असहयोग का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- असहयोग का अर्थ विरोध नहीं है। असहयोग का अर्थ समर्थन न करना, सहयोग न देना।

प्रश्न- वैष्णव-धर्म का सार-सर्वस्व क्या है?

स्वामीजी- आत्मीयता, नित्य सम्बन्ध और जातीयता—यह वैष्णव धर्म का सार सर्वस्व है। क्योंकि वे भगवान के साथ दास्य भाव से, सख्य भाव से, वात्सल्य भाव से, मधुर भाव से सम्बन्ध जोड़ते हैं। मैं प्रभु का नित्य सखा हूँ, मैं प्रभु का नित्य दास हूँ, मैं प्रभु की नित्य प्रिया हूँ—इस प्रकार का जो नित्य-सम्बन्ध स्वीकार किया जाता है यह असल में वैष्णव धर्म है।

प्रश्न- बल्लभ सम्प्रदाय का सार सर्वस्व क्या है?

स्वामीजी- वे कहते हैं कि पहले शरणागति ले लो, फिर ब्रह्म-सम्बन्ध ले लो। ब्रह्म-सम्बन्ध होता है बल्लभ सम्प्रदाय में। तो परमात्मा और मनुष्य इन दोनों में जातीय एकता है। इसीलिये वहाँ सेवा की प्रधानता है उपासना की प्रधानता नहीं है चिन्तन की प्रधानता नहीं है। आप भगवान की किस-किस प्रकार से, कैसी-कैसी सेवा करते हो, कैसे खिलाते हो, कैसे पिलाते हो आदि। असल में यह बल्लभ सम्प्रदाय का सार-सर्वस्व है।

प्रश्न- प्रमाद क्या है?

स्वामीजी- जब प्राणी निज विवेक का अनादर करता है तब इन्द्रियों के ज्ञान को ही पूरा ज्ञान मान बैठता है, जो वास्तव में प्रमाद है।

प्रश्न- परिस्थितियों का सदुपयोग क्या है?

स्वामीजी- आस्तिक परिस्थितियों का सदुपयोग अपने प्रभु के नाते करता है, अध्यात्मवादी सर्वात्म-भाव से करता है और भौतिकवादी विश्व के नाते करता है।

प्रश्न- विरक्ति का वास्तविक अर्थ क्या है?

स्वामीजी- इन्द्रियों के विषयों से अरुचि हो जाना अर्थात् भोग की अपेक्षा भोक्ता का मूल्य बढ़ा लेना। भोक्ता भोग के बिना भी सहर्ष रह सके।

प्रश्न- अपने कल्याण का क्या अर्थ है?

स्वामीजी- अपनी प्रसन्नता के लिये अपने से भिन्न की आवश्यकता न रहे।

प्रश्न- सुन्दर समाज के निर्माण का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- जिस समाज में एक-दूसरे के अधिकारों का अपहरण न होता हो।

प्रश्न- संयोग क्या है?

स्वामीजी- संयोग है-सुने हुए, माने हुए सम्बन्धों का सद्भाव। जो हमने सुनकर मान लिया और उस पर सद्भाव कर लिया, उसी का नाम संयोग है।

प्रश्न- सम्बन्ध के भेद क्या हैं?

स्वामीजी- सम्बन्ध दो प्रकार का होता है। एक भेद-भाव का दूसरा अभेद-भाव का।

प्रश्न- अभेद भाव का सम्बन्ध किसे कहते हैं?

स्वामीजी- जिससे 'अहं' की पुष्टि हो।

प्रश्न- भेद-भाव का सम्बन्ध किसे कहते हैं?

स्वामीजी- जिससे 'मम्' की पुष्टि हो।

प्रश्न- स्वाधीनता का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- वासनाओं से रहित होना। साधारण लोग अपनी इच्छा-पूर्ति के सुख को ही स्वाधीनता मानते हैं जो वास्तव में पराधीनता है।

प्रश्न- मुक्ति किसे कहते हैं?

स्वामीजी- स्थायी स्वाधीनता का नाम मुक्ति है।

प्रश्न- लालसा किसे कहते हैं?

स्वामीजी- लालसा उसे नहीं कहते जो मिटाई जा सके। जो मिटाई जा सके उसे तो वासना कहते हैं।

प्रश्न- मुक्ति कब मिलती है?

स्वामीजी- मुक्ति मिलती है निर्दोषता के आ जाने पर।

प्रश्न- हम भले कब होते हैं?

स्वामीजी- जब अपना कोई संकल्प नहीं रखते।

प्रश्न- हम बुरे कब होते हैं?

स्वामीजी- जब अपना कोई संकल्प रखते हैं।

प्रश्न- जीवन में श्रम का उद्‌गम स्थान क्या है?

स्वामीजी- असत् की कामना, असत् का विश्वास, असत् से सम्बन्ध और असत् का दुरुपयोग। इन सब कारणों से श्रम की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न- असहयोग का क्या अर्थ है?

स्वामीजी- असहयोग का पहला अर्थ होता है कि उससे तादात्म्य न रखें। दूसरा अर्थ होता है कि उसका अपने पर प्रभाव न हो।

प्रश्न- अपने कल्याण का अर्थ क्या है और सुन्दर समाज के निर्माण का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- अपने कल्याण का अर्थ है-अपनी प्रसन्नता के लिए अपने से भिन्न की आवश्यकता न रहे और सुन्दर समाज के निर्माण का अर्थ है कि जिस समाज में एक दूसरे के अधिकारों का अपहरण न होता हो। कुछ लोग सुन्दर समाज का अर्थ मानते हैं—सुन्दर-सुन्दर मकानों का निर्माण, सुन्दर-सुन्दर सड़कों का निर्माण, सुन्दर-सुन्दर बगीचों का निर्माण। ये सब तो बाह्य चीजें हैं। वास्तव में सुन्दर समाज की कसौटी यह है कि जिस समाज में किसी के अधिकारों का अपहरण न होता हो।

प्रश्न- जब हमें अपने अधिकार प्रिय हैं, तो हमारे अधिकार क्या होंगे?

स्वामीजी- हमारे अधिकार वही होंगे, जो हमारे साथियों के कर्त्तव्य हैं। और हमारे साथियों के अधिकार वे हैं, जो हमारे कर्त्तव्य हैं।

हमारे अधिकार तभी सुरक्षित रह सकते हैं जब हमारे साथी कर्त्तव्य-परायण हों और हमारे साथियों के अधिकार तभी सुरक्षित होंगे जब हम कर्त्तव्यनिष्ठ हों।

प्रश्न- सुन्दरता समाज में कब आयेगी?

स्वामीजी- जब व्यक्ति में सुन्दरता आयेगी तब।

प्रश्न- सुन्दर समाज का असली दृश्य क्या है?

स्वामीजी- जहाँ किसी विधान की आवश्यकता न हो, जहाँ बल के द्वारा किसी को बात मनवाने की आवश्यकता न हो। जहाँ सुन्दरता आ जाती है वहाँ इन चीजों की जरूरत नहीं होती। न चौकीदार रखना पड़ता है और न ताला ही लगाना पड़ता है। सुन्दरता का वास्तविक अर्थ यह है कि हम सब अनेक होते हुए भी एक होकर रहें।

प्रश्न- एकता का अनुभव कैसे हो?

स्वामीजी- हम जाग्रत अवस्था में विविध प्रकार की भिन्नता होते हुए भी एकता का अनुभव करें। वह तभी सम्भव है जब हम एकमात्र अपना कर्त्तव्य जानें और उसके पालन में तत्पर हो जाएँ।

प्रश्न- अधिकार का क्या मानव-जीवन में कोई स्थान ही नहीं है?

स्वामीजी- अपने अधिकार की प्रियता से हम यह अनुभव करें कि दूसरों को भी अपना अधिकार प्रिय है और दूसरों की प्रियता की पूर्ति ही मानवता है।

प्रश्न- मानव में मानवता कैसे आये?

स्वामीजी- हमारा कर्म भाव-रहित न हो और भाव विवेक-शून्य न हो, अर्थात् हमारी भावनाएँ निज-विवेक से प्रकाशित रहें और हमारा कर्म भाव से प्रभावित हो। यह नियम है कि कर्म में प्रवृत्ति जिस भाव से

होती है कर्म के अन्त में कर्त्ता उसी भाव में विलीन हो जाता है और फिर भाव विवेक से स्वतः अभेद हो जाता है। अर्थात् विवेक हमारा जीवन बन जाता है और फिर अविवेक तथा इसके कार्यरूप अनेक विकार सदा के लिए ही मिट जाते हैं। यही वास्तव में मानव-जीवन है क्योंकि निर्विकार जीवन ही मानव-जीवन है।

प्रश्न- यदि पर दोष-दर्शन न करें तो माता-पिता बालकों का, गुरुजन शिष्यों का, राष्ट्र प्रजा का सुधार कैसे करें? क्योंकि इनमें अपने दोष देखने की सामर्थ्य नहीं है।

स्वामीजी- यह सन्देह निर्मूल है। जो जिस अवस्था में होता है, वह उस अवस्था के दोषों को भी जानता है; क्योंकि प्राकृतिक नियमानुसार मनुष्य-मात्र को अपने दोष देखने का विवेक स्वतः प्राप्त है। बालक बालकपन के दोष अवश्य देख लेगा, युवक युवावस्था के दोष अवश्य देख लेगा, विद्यार्थी विद्यार्थी-अवस्था के दोष अवश्य देख लेगा, विद्वान् विद्वत्ता के दोष अवश्य देख लेगा; महाजन और मजदूर भी अपनी-अपनी अवस्था के दोष अवश्य देख लेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी- अपनी परिस्थितियों में अपने-अपने दोषों का दर्शन सभी को सम्भव है। आपकी सहायता की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न- शासक, नेता और गुरु में क्या भेद है?

स्वामीजी- शासक बल के द्वारा, नेता विधान के द्वारा और गुरु ज्ञान के द्वारा सुधार करने का प्रयास करते हैं। यह अन्तर होते हुए भी तीनों ही सुधारने का दावा करते हैं। परन्तु भैया, मानवता तो एक अनूठी प्रेरणा देती है और वह यह कि हमें नेता होना है तो अपने ही नेता बनें, यदि हमें शासन करना है तो अपने पर ही शासन करें, और यदि गुरु बनने

की कामना है तो अपने ही गुरु बनें। मानवता के इस दृष्टिकोण को जब हम अपनायेंगे, तो हम अपने को ही अपना शिष्य और अपने जीवन को ही अपना समाज और अपने चरित्र को ही अपनी प्रजा बना लेंगे। यह नियम है कि जो अपना गुरु बन जाता है, अपना नेता बन जाता है और अपना शासक हो जाता है वह सभी का गुरु, शासक और नेता बन जाता है।

प्रश्न- हम अपने गुरु, नेता या शासक कैसे बनें?

स्वामीजी- भौतिकवाद की दृष्टि से मानव-मात्र को जो विवेक प्राकृतिक नियमानुसार मिला है, आस्तिकवाद की दृष्टि से जो विवेक प्रभु की अहैतुकी कृपा से मिला है और अध्यात्मवाद की दृष्टि से जो अपनी ही एक विभूति है वह विवेक ही वास्तव में गुरु, नेता तथा शासक है, जो प्रत्येक भाई-बहिन को स्वत: प्राप्त है। पर, खेद तो यह है कि हम उस विवेक का प्रयोग अपने जीवन पर न करके, समाज पर करने की सोचते हैं। समाज इन्द्रिय-जन्य ज्ञान पर ही विश्वास करता है। वह जैसा देखता है, वैसा बनता है। जिस चरित्र को हम अपने जीवन से नहीं दिखा पाते, केवल समझा कर समाज में उसका प्रचार करना चाहते हैं अथवा यों कहो कि शासक बनकर बल-प्रयोग से उसे समाज द्वारा मनवाना चाहते हैं अथवा गुरु बनकर समाज के जीवन में उसे ढालना चाहते हैं—यह वास्तव में सम्भव नहीं है।

प्रश्न- मानवता प्राप्त कैसे करें?

स्वामीजी- मानवता प्राप्त करने में सभी भाई-बहिन सर्वथा स्वतन्त्र हैं। हमसे कोई ऐसा कार्य न हो जिसे हम अपने साथ पसन्द नहीं करते और जो हम अपने प्रति दूसरों से कराना चाहते हैं वह हम दूसरों के प्रति करने के लिए सर्वदा उद्यत बने रहें।

प्रश्न- योग का क्या अर्थ है?

स्वामीजी- योग का अर्थ है—चित्त की वृत्तियों का सब ओर से हटकर किसी एक ओर लग जाना अथवा यों कहें कि 'पर' से हटकर 'स्व' में विलीन हो जाना, अथवा यों कहें कि राग से रहित होकर चित्त का वीतराग हो जाना। चित्त की वीतरागता का ही दूसरा नाम 'योग' है।

प्रश्न- चित्त की शान्ति तथा स्थायी प्रसन्नता की प्राप्ति कैसे हो?

स्वामीजी- योग कल्पवृक्ष के समान है, अर्थात् योग प्राप्त होने पर हमें वह शक्ति स्वत: प्राप्त हो जाती है जिसके द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। जब चित्त वीतराग हो जाता है तब इन्द्रियाँ विषयों से विमुख होकर मन में विलीन हो जाती हैं, फिर मन बुद्धि में विलीन हो जाता है और बुद्धि सम हो जाती है। बुद्धि के सम होते ही दृश्य अर्थात् जिसे हम 'यह' कहते थे और दर्शन अर्थात् जिसके द्वारा 'यह' की प्रतीति होती थी, वे दोनों अपने में ही अर्थात् द्रष्टा में विलीन हो जायेंगे और त्रिपुटी का अभाव हो जायगा। त्रिपुटी का अभाव होते ही चिर-शान्ति तथा स्थायी प्रसन्नता स्वत: प्राप्त होगी।

प्रश्न- मानव कल्याण का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- यह नियम है कि जहाँ शान्ति तथा प्रसन्नता आ जाती है वहाँ निर्वासना स्वत: आ जाती है। कारण कि शान्ति और प्रसन्नता खिन्नता और नीरसता को खा लेती है। खिन्नता और नीरसता-रहित जीवन वासना-रहित जीवन हो जाता है। यह सभी का अनुभव है कि वासना-रहित जीवन में पराधीनता शेष नहीं रहती, अर्थात् एक ऐसी अनुपम स्वाधीनता प्राप्त होती है जिसको पाकर फिर और कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। बस! यही कल्याण का स्वरूप है।

प्रश्न- कल्याणयुक्त जीवन पर कुछ और प्रकाश डालें?

स्वामीजी- जब तक हमें कुछ प्राप्त करना शेष है तब तक हम अभाव का अनुभव करते हैं और जब तक हम किसी भी अभाव का अनुभव करते हैं तब तक हमें मानना होगा कि हमारा कल्याण नहीं हुआ। जैसे पेट भर जाने पर भूख की वेदना स्वतः शान्त हो जाती है और फिर न भोजन की ही आवश्यकता रहती है और न उसका चिन्तन ही होता है, वैसे ही अभाव का अभाव होने पर जीवन में स्वतः एक ऐसी अनुपम अलौकिकता आ जाती है कि फिर कुछ करना या पाना शेष नहीं रहता। ऐसे जीवन का नाम ही कल्याणयुक्त जीवन है।

प्रश्न- अभाव का अभाव कैसे हो?

स्वामीजी- जितने भी अभाव हमारे जीवन में हैं, उन सबका मूल एकमात्र राग है। राग-रहित होने पर किसी प्रकार का अभाव शेष नहीं रह जाता।

प्रश्न- राग-रहित होने के उपाय क्या हैं?

स्वामीजी- राग-रहित होने के दो उपाय हैं—एक तो यह कि अपने पर दूसरों का जो अधिकार है, उसकी पूर्ति कर दी जाय और दूसरा यह कि अविवेक के कारण दूसरों पर अपना जो अधिकार मान लिया था, उसकी लालसा का त्याग कर दिया जाय।

प्रश्न- 'साधन तत्व' का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- साधन-तत्त्व का स्वरूप है—जगत् के अधिकारों की रक्षा और भगवत्-विश्वास, सम्बन्ध, प्रीति एवं तत्त्व-जिज्ञासा।

प्रश्न- क्या हमारी साधना ऐसी महत्वपूर्ण वस्तु है, जिसकी आवश्यकता भगवान् को भी है और संसार को भी है?

स्वामीजी- नि:सन्देह यही सत्य है। आप विचार करें, क्या भगवान् ने अनेक बार यह नहीं कहा कि मेरी शरण में आओ? शरणागति साधना नहीं तो क्या है? और क्या संसार आपके सामने नहीं कहता कि हमारे अधिकार की रक्षा करो? अब विचार करो, संसार भी आपके सामने अधिकार की रक्षा के लिए आता है और भगवान् भी आपसे कहते हैं कि तू मेरी शरण में आजा। तात्पर्य क्या है? तुम्हारी माँग संसार को भी है और भगवान् को भी। अन्तर केवल इतना है कि संसार को तो तुम्हारी माँग अपनी कामनापूर्ति के लिए है, और भगवान् को तुम्हारे ही कल्याण के लिए है। कारण कि वे स्वभाव से ही प्राणी के परम सुहृद हैं।

प्रश्न- जिस संसार को हमारी माँग है क्या उस संसार की हमें माँग नहीं हो सकती?

स्वामीजी- कदापि नहीं! कारण कि अपने को देह से अतीत अनुभव करने पर किसी को भी संसार की चाह नहीं रहती। अत: यह सिद्ध हुआ कि हमें संसार की चाह नहीं है, किन्तु जब हम अविवेक के कारण देह से मानी हुई एकता स्वीकार कर लेते हैं तब हमें अपने में संसार की चाह का भास-मात्र होता है।

प्रश्न- व्यक्ति का अस्तित्व क्या है?

स्वामीजी- व्यक्ति है समाज के अधिकारों का समूह।

प्रश्न- कृपया संक्षेप में मानव की महिमा बताएं?

स्वामीजी- जिस जीवन से सभी के अधिकार सुरक्षित हों, उसी का नाम वास्तव में मानव-जीवन है। मानवता इतना महत्वपूर्ण तत्त्व है कि जिसकी माँग सदैव सभी को रहती है।

प्रश्न- अपने को सुन्दर बनाने का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- सुन्दर बनने का अर्थ है—अचाह पद। अचाह का अर्थ है—अपनी कोई चाह नहीं रहना। जहाँ अपनी कोई चाह नहीं रहती वहाँ बन्धन नहीं रहता, पराधीनता नहीं रहती तथा जड़ता नहीं रहती। वहाँ चिन्मयता आ जाती है, स्वतन्त्रता आ जाती है और जीवन में एक ऐसी विलक्षणता आ जाती है जिसको प्रकट करने के लिए शब्द नहीं हैं, परन्तु उसका अस्तित्व है। उसी जीवन को आप चिन्मय जीवन कह सकते हैं, आस्तिक जीवन कह सकते हैं, आध्यात्मिक जीवन कह सकते हैं।

प्रश्न- श्रेष्ठ मानव जीवन किसे कहेंगे?

स्वामीजी- सुन्दर मानव जीवन उसे कहेंगे जिसमें किसी के अधिकार का अपहरण न हो और जिस जीवन की आवश्यकता सर्वदा सभी को बनी रहे। उसी जीवन का नाम सुन्दर मानव-जीवन है।

प्रश्न- चाह की उत्पत्ति कब और क्यों होती है?

स्वामीजी- चाह की उत्पत्ति तब होती है जब हम अपने को मानव न मानकर देह मान लेते हैं।

प्रश्न- देह मानने और मानव मानने में क्या भेद है?

स्वामीजी- इसमें एक भेद है—देह मानकर हम अधिकार-लालसा में आबद्ध होते हैं और मानव मानकर कर्त्तव्य-पालन में प्रवृत्त होते हैं। जिस समय जीवन में अधिकार लिप्सा दिखाई दे उस समय विचार करना चाहिए कि हम देह हैं या मानव? यदि आपको स्मरण आ जाय कि हम देह नहीं हैं, हम तो मानव हैं तो आप स्वयं कहने लग जायेंगे कि हमें तो दूसरे के अधिकार की रक्षा करनी है, 'अपने' को कुछ अधिकार लालसा नहीं है।

प्रश्न- कल्याण और अकल्याण का हेतु क्या है?

स्वामीजी- जिस अंश में हमारे कर्त्तव्य से दूसरे की चाह की पूर्ति होती है, उसी अंश में हमारा जीवन उदारता तथा प्रेम से भर जाता है, जो कल्याण का हेतु है और जिस अंश में हम अपनी चाह-पूर्ति की सोचते हैं उसी अंश में हम परतन्त्र तथा भोगी हो जाते हैं, जो अकल्याण का हेतु है।

प्रश्न- चाह की उत्पत्ति का कारण क्या है?

स्वामीजी- चाह की उत्पत्ति का कारण यदि विवेकदृष्टि से देखा जाय तो एकमात्र अविवेक है।

प्रश्न- अविवेक क्या है?

स्वामीजी- अविवेक कहते हैं—विवेक के अनादर को। अविवेक का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। जो विवेक है उसका हम अनादर करते हैं, अर्थात् जाने हुए को नहीं मानते। इसी का नाम अविवेक है।

प्रश्न- हम जाने हुए का अनादर क्यों करते हैं? इसका कारण क्या है?

स्वामीजी- जाने हुए के अनादर का एकमात्र कारण परिस्थिति द्वारा सुख लेने की आसक्ति है, और कोई कारण नहीं।

प्रश्न- परिस्थिति द्वारा सुख लेने की आसक्ति क्या है?

स्वामीजी- परिस्थिति में और अपने में हमने जो एकता मान ली है, उस एकता की सत्यता इतनी दृढ़ हो गई है कि हमारी सत्ता से परिस्थिति सत्ता पाकर हम पर ही शासन करने लगी है। परिस्थिति अपनी सत्ता से हम पर शासन नहीं करती, किन्तु सत्ता हमसे लेती है, चेतना हमसे लेती है और हम पर ही शासन करती है। यही कारण है परिस्थितियों में सुख की आसक्ति होने का।

प्रश्न- सत्य क्या है?

स्वामीजी- सत्य उसे नहीं कहते, जो किसी के न मानने से अथवा किसी के वर्णन न करने से न रहे। सत्य तो उसे कहते हैं जो आप जानें तो सत्य, न जानें तो सत्य मानें तो सत्य, न मानें तो सत्य और उसके सम्बन्ध में मौन रहें तो सत्य। अतः दुःख की निवृत्ति के पश्चात् जो उपलब्ध होता है उसका नाम सत्य है।

प्रश्न- अचाह-पद की प्राप्ति हमें कैसे हो?

स्वामीजी- अपने जाने हुए ज्ञान का आप अनादर न करें।

प्रश्न- सही करने का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- सही करने का अर्थ है, जिस प्रवृत्ति से जिनका सम्बन्ध है उनके अधिकार की रक्षा। जैसे, हम वही बोलें जिससे सुनने वाले का हित तथा प्रसन्नता हो और अगर हम वैसा न बोल सकें तो बोलने के राग से रहित होकर मौन हो जायें।

प्रश्न- शान्तिपूर्वक सहन करने का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- शान्तिपूर्वक सहन करने का अर्थ है, अपने दुःख का कारण किसी और को न मानकर दुःख को सहन कर लेना।

प्रश्न- सुख का सदुपयोग कैसे करें?

स्वामीजी- सुख आने पर अपने से दुखियों को बिना किसी अभिमान के वितरण कर देना चाहिये। चूँकि सुख वास्तव में दुखियों की ही धरोहर है, अतः उसे अपना नहीं मानना चाहिये। अन्तर केवल यह है कि आस्तिक उस सुख को प्रभु के नाते दुखियों को भेंट करता है, तत्त्वज्ञ सर्वात्मभाव से और सेवक विश्व के नाते से।

प्रश्न- आनन्द किसको मिलता है?

स्वामीजी- जिसकी प्रवृत्ति दूसरों के हित के लिये हो और जिसकी निवृत्ति वासना-रहित हो।

प्रश्न- दु:ख किसके पास आता है?

स्वामीजी- जिसकी प्रवृत्ति अपने सुख के लिये हो अथवा जिसकी निवृत्ति वासना-युक्त हो।

प्रश्न- गुरु का काम क्या है?

स्वामीजी- गुरु का काम है-साधक की योग्यतानुसार साधन का निर्माण तथा उसके दोषों का ज्ञान कराना।

प्रश्न- भूल किसे कहते हैं?

स्वामीजी- भूल उसे कहते हैं जिसे जानते तो हैं, किन्तु जानते हुए भी न जानने जैसी स्थिति हो गई हो। जानते हुए, न जानने जैसी स्थिति हो जाने का नाम ही वास्तव में भूल है।

प्रश्न- भूल कब तक जीवित रहती है?

स्वामीजी- जब तक हम अपने विवेक का उपयोग अपने पर नहीं करते। जब हम विवेक का उपयोग अपने पर करने लगते हैं और अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति विवेक के प्रकाश में ही करने लगते हैं, तब भूल अपने-आप मिट जाती है।

प्रश्न- विवेक का आदर करने में कठिनाई क्या है?

स्वामीजी- कठिनाई यह है कि हम मन, इन्द्रिय आदि के व्यापार को ही जीवन मान लेते हैं। यदि हम विवेक-पूर्वक मन, इन्द्रिय आदि के व्यापार से अपने को असंग कर लें अथवा उसमें जीवन-बुद्धि न रखें, तो बहुत ही सुगमतापूर्वक विवेक का आदर कर सकते हैं।

प्रश्न- सरल विश्वास किसे कहते हैं?

स्वामीजी- सरल विश्वास उसे कहते हैं जिसमें कोई विकल्प न हो, जो सहज भाव से प्राप्त हो; जिसे यह विश्वास हो कि प्रभु मेरे हैं

और मैं प्रभु का हूँ। 'वह' कहाँ है? कैसा है? यह न जानते हुए भी जिसे अपने और प्रभु के नित्य-सम्बन्ध पर विश्वास हो, उसी का नाम सरल विश्वास है।

प्रश्न- सार्थक सम्बन्ध किसके साथ हो सकता है?

स्वामीजी- सबसे अथवा अपने से अथवा प्रभु से।

प्रश्न- साधनरूप विश्वास क्या है?

स्वामीजी- भगवत्-विश्वास अथवा कर्त्तव्य-विश्वास ही साधन रूप विश्वास है।

प्रश्न- सार्थक चिन्तन क्या है?

स्वामीजी- तत्त्व-चिन्तन अथवा प्रिय-चिन्तन ही सार्थक-चिन्तन है।

प्रश्न- प्रवृत्ति कैसी हो?

स्वामीजी- प्रवृत्ति वही सार्थक है जिसमें दूसरे का हित निहित हो।

प्रश्न- हमारा वर्तमान जीवन क्या है?

स्वामीजी- कुछ करना, कुछ मानना और कुछ जानना। जो कुछ हम करें वह विवेक के प्रकाश से प्रकाशित होकर करें। जो कुछ मानें वह विवेक के प्रकाश में ही मानें और जो कुछ जानें वह स्वयं से जानें।

प्रश्न- समता कैसे प्राप्त हो?

स्वामीजी- वस्तुओं के सतत् परिवर्तन को जानकर हम राग से रहित हो जाते हैं और राग से रहित हो जाने पर बुद्धि की आवश्यकता शेष नहीं रहती। जब बुद्धि का कार्य पूरा हो जाता है, तब वह स्वत: अपने अधिष्ठान में विश्राम पा जाती है। तब हमारा मन निर्विकल्प होकर बुद्धि

में विलीन हो जाता है और इन्द्रियाँ विषयों से विमुख होकर अविषय हो जाती हैं। अर्थात् बुद्धि के सम होते ही निर्विकल्पता, जितेन्द्रियता और समता आ जाती है।

प्रश्न- 'है' क्या है?

स्वामीजी- जो उत्पत्ति-विनाश से रहित है अथवा उत्पत्ति-विनाश से पूर्व है। जिससे उत्पत्ति और विनाश प्रकाशित है, उसी को 'है' के अर्थ में लेना चाहिए। 'है' का वर्णन संकेत भाषा से ही सम्भव है। कारण कि जिन साधनों से हम 'हैं' का वर्णन कर सकते हैं वे सब 'है' से ही प्रकाशित हैं और 'है' की सत्ता से ही सत्ता पाते हैं। जो साधन जिससे सत्ता पाते हैं वे उसका वर्णन कैसे कर सकते हैं? केवल संकेत ही कर सकते हैं।

प्रश्न- इच्छाओं की निवृत्ति कैसे हो?

स्वामीजी- यदि हमें अपनी इच्छाओं का अन्त करना है तो सर्वप्रथम अपनी इच्छाओं का निरीक्षण करना चाहिये। उत्पन्न हुई इच्छाओं में जो ऐसी इच्छाएँ हों कि जिनका सम्बन्ध वर्तमान से हो, जिनको पूरा किये बिना किसी प्रकार नहीं रह सकते, जिनकी पूर्ति के साधन प्राप्त हों तथा जिनसे किसी का अहित न हो, उन इच्छाओं की पूर्ति कर लेनी चाहिये। परन्तु पूरी करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उनकी पूर्ति का जो सुख है वह हमें अभीष्ट नहीं है। कारण, यदि हम इच्छा-पूर्ति का सुख लेते रहेंगे, तो पुनः इच्छाएँ उत्पन्न होती रहेंगी और यह चक्र चलता ही रहेगा। जिन इच्छाओं में उपर्युक्त चार बातें न घटती हों, उन इच्छाओं का विचार पूर्वक त्याग करना होगा। यह नियम है कि आवश्यक इच्छाओं की पूर्ति करने पर अनावश्यक इच्छाओं के त्याग का बल स्वतः आ जाता है।

प्रश्न- निरर्थक चिन्तन क्या है?

स्वामीजी- जिसके लिये कर्म अपेक्षित हो, जिससे देश-काल की दूरी हो, जो उत्पत्ति-विनाश-युक्त हो, जिसमें जड़ता का दोष हो उसका चिन्तन निरर्थक-चिन्तन है।

प्रश्न- हमारी जातीय तथा स्वरूप की एकता किससे है तथा मानी हुई एकता किससे है?

स्वामीजी- जिसकी स्वाभाविक आवश्यकता है उससे जातीय एवं स्वरूप की एकता है। और, मानी हुई एकता उसी से हो सकती है जिसकी अस्वाभाविक इच्छाएँ हैं। अर्थात् अमरत्व से ही हमारी जातीय तथा स्वरूप की एकता हो सकती है, क्योंकि उसकी स्वाभाविक आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त शरीरादि वस्तुओं से तो केवल मानी हुई एकता ही सिद्ध हो सकती है।

प्रश्न- जब जीवन में वस्तु-चिन्तन का कोई स्थान ही नहीं है, तो हमें आवश्यक वस्तुएँ कैसे मिलेंगी?

स्वामीजी- आप गम्भीरता से विचार करें कि वस्तुएँ चिन्तन करने मात्र से कभी प्राप्त नहीं होतीं। वस्तुओं की प्राप्ति का सम्बन्ध तो वर्तमान परिस्थिति के सदुपयोग अर्थात् कर्म से है, चिन्तन से नहीं। यह नियम है कि कर्म का सम्बन्ध वर्तमान परिस्थिति से होता है और चिन्तन का सम्बन्ध होता है अप्राप्त परिस्थिति से। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राप्त योग्यतानुसार आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग करें, किसी अप्राप्त परिस्थिति का चिन्तन न करें। इससे यह सिद्ध हुआ कि वर्तमान में जो बल तथा विवेक आपको प्राप्त है उसके द्वारा यदि आप सही कर्म करें तो आवश्यक वस्तु अवश्य मिलेगी, चिन्तन से आपको वस्तु नहीं मिलेगी।

प्रश्न- चिन्तन से क्या मिलेगा?

स्वामीजी- चिन्तन से वह मिलेगा जो उत्पत्ति-विनाश से अतीत है, जिससे देश-काल की दूरी नहीं है और जो पर-प्रकाश्य नहीं है; अर्थात् दिव्य तथा चिन्मय है। उसके मिल जाने पर किसी प्रकार का अभाव शेष नहीं रहेगा।

प्रश्न- हम अभाव का अनुभव कब करते हैं?

स्वामीजी- जब हम अपने को वस्तुओं, अवस्थाओं एवं परिस्थितियों में आबद्ध कर लेते हैं।

प्रश्न- परिस्थिति का सदुपयोग क्या है?

स्वामीजी- प्राप्त वस्तुओं तथा योग्यता का सदुपयोग ही परिस्थिति का सदुपयोग है। अब हम निज-विवेक से देखें कि हमारे मन में शुद्ध संकल्प उत्पन्न होते हैं अथवा अशुद्ध। यदि शुद्ध संकल्प उत्पन्न होते हैं, तो मिले हुए मन का सदुपयोग हो गया। यदि अशुद्ध संकल्प उत्पन्न होते हैं, तो मिले हुए मन का दुरुपयोग हो गया।

प्रश्न- हम परिस्थिति का सदुपयोग क्यों नहीं कर पाते?

स्वामीजी- इसका एकमात्र कारण है—निजज्ञान अर्थात् अलौकिक विवेक का अनादर।

प्रश्न- निज ज्ञान क्या है?

स्वामीजी- निज-ज्ञान वही है जिससे आप अपने को तथा 'पर' को जानते हैं अथवा यों कहो कि निज-ज्ञान वह है जिससे निज-ज्ञान को और पर-ज्ञान को जानते हैं।

प्रश्न- पर-ज्ञान का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- पर-ज्ञान का अर्थ है बुद्धि का ज्ञान और इन्द्रियों का ज्ञान। जिस प्रकार बुद्धि के ज्ञान से इन्द्रियों के ज्ञान को जानते हैं, उसी

प्रकार निज-ज्ञान से बुद्धि के ज्ञान को जानते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान को ज्ञान से ही जानते हैं।

प्रश्न- अज्ञान क्या है?

स्वामीजी- अल्प ज्ञान का दूसरा नाम ही अज्ञान है। अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नहीं है। जब प्राणी अल्प ज्ञान को ही पूरा ज्ञान मान लेता है तब वह वह करने लगता है, जो नहीं करना चाहिये और वह मानने लगता है, जो नहीं मानना चाहिये।

प्रश्न- नित्य-योग किससे नहीं है?

स्वामीजी- माने हुए 'मैं' तथा माने हुए 'मेरे' से नित्य-योग नहीं है।

प्रश्न- प्राप्त वस्तु को अपना न मानने का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- अपना न मानने का अर्थ है कि प्राप्त वस्तुओं में मोहपूर्वक आबद्ध नहीं होना चाहिये और उनके रहने पर अभिमान तथा न रहने पर दु:ख नहीं होना चाहिये; न उनका चिन्तन होना चाहिये।

प्रश्न- 'मैं' और 'ज्ञान' में भेद क्या है?

स्वामीजी- जिसे आप 'यह' कहते हैं, उसे 'मैं' नहीं कह सकते। और जिसे 'मैं' कह सकते हैं, उसे ज्ञान नहीं कह सकते। क्योंकि 'मैं' सीमित है और ज्ञान अनन्त है; 'मैं' परिवर्तनशील है और ज्ञान नित्य है। 'मैं' करण का भले ही ज्ञाता हो पर 'मैं' ज्ञान का ज्ञाता नहीं है, क्योंकि ज्ञान तो स्वयं अपना ज्ञाता है। अब 'मैं' और 'ज्ञान' का भेद स्पष्ट हो गया। ज्ञान की दृष्टि से 'मैं' भी 'यह' के अर्थ में आ जाता है, अर्थात् अहंता और ममता दोनों को ही 'यह' के अर्थ में समझना चाहिये।

प्रश्न- इन्द्रियजन्य ज्ञान, बुद्धिजन्य ज्ञान तथा शुद्ध ज्ञान में भेद क्या है?

स्वामीजी- उस अनन्त ज्ञान में तो 'मैं'-'तू' लगता ही नहीं। वह तो अनन्त-नित्य-चिन्मय तत्त्व ही है। उस तत्त्व का प्रकाश बुद्धि में आ जाता है, तो वह बुद्धिजन्य ज्ञान बन जाता है। उसका प्रकाश बाद में इन्द्रियों में आ जाता है, तो इन्द्रियजन्य ज्ञान बन जाता है। इन्द्रियों के ज्ञान में आपको सन्देह हो सकता है, बुद्धि के ज्ञान में आपको सन्देह हो सकता है। क्योंकि वह अल्प है, सीमित है और परिवर्तनशील है। लेकिन जिस ज्ञान से बुद्धि का ज्ञान और इन्द्रियों का ज्ञान प्रकाशित होता है, उस ज्ञान में सन्देह हो ही नहीं सकता।

प्रश्न- हम साधारण प्राणियों में तत्त्व-जिज्ञासा की जागृति कैसे हो?

स्वामीजी- तत्त्व-जिज्ञासा की जागृति सन्देह की वेदना से होती है और सन्देह की उत्पत्ति अधूरे ज्ञान से होती है। जो कुछ नहीं जानता उसे भी सन्देह नहीं होता और जो सब कुछ जानता है उसे भी सन्देह नहीं होता। प्रत्येक भाई-बहिन कुछ-न-कुछ जानते हैं, और जो कुछ-न-कुछ जानते हैं उन्हें सन्देह की वेदना होना स्वाभाविक है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव-जीवन तो तत्त्व-जिज्ञासा की जागृति का प्रतीक ही है। किन्तु प्रमाद-वश प्राणी सुख-लोलुपता के कारण तत्त्व-जिज्ञासा को दबाता रहता है।

प्रश्न- मानी हुई स्वीकृति हम कैसे अस्वीकार कर सकते हैं?

स्वामीजी- मानी हुई स्वीकृति का जन्म अविवेक-सिद्ध है, वास्तविक नहीं। जब मानव अलौकिक विवेक का आदर करने लगता है तब अविवेक मिट जाता है। अविवेक के मिटते ही अविवेक का कार्य जो मानी हुई स्वीकृति थी, अस्वीकृति में बदल जाता है।

प्रश्न- चिन्मय जीवन से अभिन्न कैसे हो?

स्वामीजी- उसके लिए हमें सबसे प्रथम अलौकिक विवेक के प्रकाश में अपने को तीनों शरीरों से असङ्ग करना होगा। जिसके करने में मानव सर्वदा स्वाधीन है। स्थूल शरीर से असङ्ग होने पर अशुभ कर्म की उत्पत्ति नहीं होती और शुभ कर्म में आसक्ति नहीं रहती। सूक्ष्म शरीर से असङ्ग होने पर निरर्थक-चिन्तन की उत्पत्ति नहीं होती और सार्थक-चिन्तन में आसक्ति नहीं रहती। कारण शरीर से असङ्ग होने पर निर्विकल्प स्थिति में आसक्ति नहीं रहती और देह का अभिमान नहीं रहता। निरभिमानता आते ही माना हुआ अहं-भाव मिट जाता है और उसके मिटते ही जड़ता से विमुखता हो जाती है अथवा यों कहो कि चिन्मय जीवन से अभिन्नता हो जाती है।

प्रश्न- अलौकिक विवेक क्या है?

स्वामीजी- जिस ज्ञान से हम बुद्धि, मन, इन्द्रिय आदि समस्त जीवन के दोषों को जानते हैं, उस ज्ञान का नाम ही अलौकिक विवेक है।

प्रश्न- विषयों के राग से मुक्त होकर भोग से योग की ओर अग्रसर कैसे हो?

स्वामीजी- उसके लिए सबसे प्रथम बुद्धिजन्य ज्ञान से इन्द्रिय-जन्य ज्ञान पर विजय प्राप्त करनी होगी। इन्द्रिय-जन्य ज्ञान शरीरादि वस्तुओं में सत्यता तथा सुन्दरता का दर्शन कराता है। उस पर विश्वास करने से प्राणी विषयों में आसक्त हो जाता है, जिससे बेचारा प्राणी पराधीन होकर दीन-हीन हो जाता है। पर, बुद्धिजन्य ज्ञान शरीरादि वस्तुओं में असुन्दरता, सतत् परिवर्तन तथा क्षणभंगुरता आदि दोषों का दर्शन कराता है, जिससे साधक सुगमतापूर्वक विषयों के राग से मुक्त होकर भोग से योग की ओर अग्रसर होता है।

प्रश्न- हम शरीर को सुन्दर-सुन्दर अलङ्कारों एवं वस्त्रों से सुशोभित क्यों रखते हैं?

स्वामीजी- बुद्धिजन्य ज्ञान के निरादर से।

प्रश्न- भोगे हुए सुखों की स्मृति ने हमें जो आगे-पीछे के चिन्तन में आबद्ध कर दिया है, उससे कैसे छुटकारा हो?

स्वामीजी- उसके लिए साधक को योग्यता, ईमानदारी तथा परिश्रमपूर्वक वर्तमान कार्य को पवित्र भाव के द्वारा करना होगा और कार्य के अन्त में अपने में छिपी हुई जिज्ञासा तथा प्रिय-लालसा को जागृत करना होगा। कारण कि चिन्तन-शक्ति हमें तत्त्व-जिज्ञासा एवं प्रिय-लालसा की ओर अग्रसर होने के लिए मिली है। उसका उपयोग विषयों के चिन्तन में नहीं करना चाहिए।

प्रश्न- भोगे हुए सुख की स्मृति क्यों आती है?

स्वामीजी- उसके लिए कहना होगा कि हम अपने को भोगी मानकर भोग करते हैं, इस कारण किये हुए का संस्कार अङ्कित हो जाता है। यह नियम है कि कर्त्ता जैसा अपने को मानता है, वैसा ही बन जाता है, और जो करता है उसका संस्कार अङ्कित हो जाता है। अङ्कित संस्कार भोगे हुए सुखों की स्मृति कराने में समर्थ होते हैं। अतः उनके मिटाने के लिये हमें अपने को भोगी मानकर भोग नहीं करना चाहिए।

प्रश्न- साधन-निर्माण करने में कठिनाई क्यों होती है?

स्वामीजी- इसका एकमात्र कारण यह है कि हम अपने निज-विवेक से सारे संसार को तो जानना चाहते हैं, पर अपनी वस्तुस्थिति को जानने का प्रयत्न नहीं करते। यह नियम है कि अपनी वस्तुस्थिति को जाने बिना कोई अपना साधन-निर्माण कर ही नहीं सकता।

प्रश्न- ऋणी न रहने का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- ऋणी न रहने का अर्थ है कि हमारी प्रवृत्तियों से किसी के अधिकारों का अपहरण न हो।

प्रश्न- ईमानदार होने का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- ईमानदार होने का अर्थ है कि शरीर आदि किसी भी वस्तु को अपना न मानें। अपना न मानने से कोई क्षति नहीं होती। अथवा यों मान लें कि सेवा करने के लिए तो सभी अपने हैं और अपने लिए तो केवल "वे" ही अपने हैं, जिनके लिए हम सभी वस्तुओं, अवस्थाओं एवं परिस्थितियों से अलग होना चाहते हैं।

प्रश्न- क्या जाग्रतावस्था में भी सुषुप्ति होती है?

स्वामीजी- जाग्रत में भी स्वप्न और सुषुप्ति होती है। किसी कार्य के करते हुए किसी ऐसी बात की स्मृति आना जिसका सम्बन्ध उस कार्य से नहीं है, यही जाग्रत का स्वप्न है। और, वर्तमान कार्य से सम्बन्ध न रहे तथा अन्य कार्य की भी स्मृति न आए, यह भीतर-बाहर का मौन ही जाग्रत की सुषुप्ति है। गहरी नींद में जड़ता का दोष रहता है, किन्तु जाग्रत की सुषुप्ति में जड़ता का दोष नहीं रहता।

प्रश्न- मानवता को विकसित करने के लिए हमें सबसे प्रथम क्या करना है?

स्वामीजी- मानवता का विकास जीवन में तभी हो सकेगा, जब हम अपने को निर्दोष तथा आत्मनिर्भर बना लें।

प्रश्न- निर्दोष होने का वास्तविक उपाय क्या है?

स्वामीजी- निर्दोष होने का वास्तविक उपाय है अपने विवेक से अपने पर न्याय करना। किसी को दण्ड देना, संघर्ष करना, किसी का

विनाश करना, किसी से द्वेष या घृणा करना—यह सब न्याय का अर्थ नहीं है।

प्रश्न- न्याय का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- न्याय का अर्थ है जिसके प्रति न्याय किया जाय, उसे उसके दोष का यथार्थ दर्शन करा देना और किसी उपाय विशेष से उस दोष को निवृत्त करा देना अर्थात् उसे निर्दोष बना देना। जिसके प्रति न्याय किया गया यदि वह निर्दोष नहीं हुआ तो समझना चाहिये कि न्यायकर्ता में कोई दोष है, अर्थात् उसके प्रति सही न्याय नहीं किया गया।

प्रश्न- व्रत किसे कहते हैं?

स्वामीजी- अपने लक्ष्य को प्राप्त करने की दृढ़ प्रतिज्ञा का नाम ही व्रत है।

प्रश्न- तप किसे कहते हैं?

स्वामीजी- उस व्रत को पूरा करने में जो कठिनाइयाँ आएँ, उन्हें सहर्ष सहन कर लेना ही तप है।

प्रश्न- प्रायश्चित किसे कहते हैं?

स्वामीजी- की हुई भूल को न दोहराना ही प्रायश्चित है और यह तभी सम्भव होगा जब भूल से भोगा हुआ सुख हमारा दु:ख बन जाय।

प्रश्न- प्रार्थना किसे कहते हैं?

स्वामीजी- अपनी निर्बलताओं एवं अभावों को मिटाने के लिए परम व्याकुलता की जागृति ही वास्तविक प्रार्थना है।

प्रश्न- निजदोष-दर्शन से क्या लाभ होता है?

स्वामीजी- अपना दोष देखते ही हम अपने को दोष से अलग अनुभव करते हैं। कारण कि दोष से असंग होने पर ही दोष देखा जा सकता है। किसी दोष की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है, प्रत्येक दोष दोषी की

सत्ता से ही सत्ता पाता है। जब दोषी निज-विवेक के प्रकाश में अपना दोष देख लेता है, तब बेचारा दोष सत्ता-हीन हो जाता है।

प्रश्न- हम दोषों को अपनाते क्यों हैं?

स्वामीजी- सुख-लोलुपता में आसक्त होकर। कारण कि सभी सुखों का जन्म किसी-न-किसी दोष से ही होता है अथवा यों कहो कि दु:ख से होता है। जैसे, यदि लोभ का दोष न हो तो लाभ का सुख नहीं होता और न हानि का दु:ख होता। यदि मोह का दोष न हो तो न संयोग का सुख होता है और न वियोग का दु:ख होता है। और, यदि अभिमान का दोष न हो तो न सम्मान का सुख होता है और न अपमान का दु:ख होता है, इत्यादि। अत: स्पष्ट हो जाता है कि सुख-दु:ख किसी दोष का ही परिणाम है।

प्रश्न- आज हमारा सुख हमारे लिए बन्धन बन गया है और दु:ख ने हमें भयभीत कर दिया है। इसका क्या कारण है?

स्वामीजी- कारण यह है कि हमने अपने प्रति न्याय तथा दूसरों के प्रति क्षमा तथा प्रेम-युक्त भावना से सुख-दु:ख का सदुपयोग नहीं किया। यदि हम सुख का सदुपयोग सेवा अर्थात् उदारता में और दु:ख का सदुपयोग त्याग अर्थात् विरक्ति में करने लग जायँ, तो न तो सुख बन्धन का हेतु रहेगा और न दु:ख भय का।

प्रश्न- उच्चकोटि का भोग कब मिलता है?

स्वामीजी- जब हमारा जीवन श्रम, संयम, सदाचार, सेवा, पुण्यकर्म तथा तप से युक्त हो जाय।

प्रश्न- स्वाधीनता का असली अर्थ क्या है?

स्वामीजी- स्वाधीनता का असली अर्थ है—वासनाओं से रहित होना और यदि कोई सङ्कल्प अनिच्छा से अथवा परेच्छा से पूरा

भी हो, तो उस सङ्कल्प-पूर्ति के सुख से असंग बने रहना अर्थात् संकल्प-पूर्ति के सुख में आबद्ध न होना। चाहे पराई इच्छा से हमारे मन की बात पूरी हो जाय, चाहे अपनी इच्छा अथवा अनिच्छा से हमारे मन की बात पूरी हो जाय। जब तक हम अपनी इच्छा के पूरा होने का सुख लेते हैं तब तक हम स्वाधीन नहीं हैं। परन्तु साधारण लोग अपनी इच्छा-पूर्ति के सुख को ही स्वाधीनता मानते हैं जो वास्तव में पराधीनता है, क्योंकि इच्छा-पूर्ति का सुख पुनः इच्छाओं को उत्पन्न करता है। इतना ही नहीं, प्रत्येक इच्छा की पूर्ति के अन्त में प्राणी उसी स्थिति में आ जाता है जिस स्थिति में इच्छाओं की उत्पत्ति से पूर्व था।

इस दृष्टि से इच्छाओं की पूर्ति का सुख तो केवल दाद की खुजली के समान है और कुछ नहीं। इच्छा-पूर्ति के सुख से दुःख दब जाता है, मिटता नहीं। इसी कारण सच्ची स्वाधीनता के लिए सर्व इच्छाओं की निवृत्ति करना अनिवार्य हो जाता है।

प्रश्न- मुक्ति कब मिलती है?

स्वामीजी- मुक्ति मिलती है निर्दोषता के आ जाने पर।

प्रश्न- प्रमाद क्या है और कहाँ से आया?

स्वामीजी- प्रमाद अलौकिक विवेक के अनादर का दूसरा नाम है। वह कहाँ से आया? जहाँ से ज्ञान का अनादर किया। कब से आया? जब से ज्ञान का अनादर किया। कब मिटेगा? जब ज्ञान का आदर करोगे। यह सन्देहकर्त्ता का ही तो ज्ञान है कि 'यह' 'मैं' नहीं हो सकता। किसी और ने सिखाया थोड़े ही है। प्रश्नकर्त्ता स्वयं अपने ज्ञान का आदर करे और माने हुए का अनादर करे, अर्थात् अपने को जो देह मान लिया है सो न मानें।

प्रश्न- दोष उत्पन्न होने का कारण क्या है? सभी दोष कैसे मिटेंगे?

स्वामीजी- सभी दोष देहाभिमान से उत्पन्न होते हैं, कारण कि देहाभिमान प्राणी में वासनाएँ उत्पन्न कर देता है। यह नियम है कि वासना-पूर्ति के सुख से राग स्वतः उत्पन्न होता है और उस सुख में जो बाधक होता है, उससे द्वेष हो जाता है। द्वेष प्रेम का प्रादुर्भाव नहीं होने देता, क्योंकि जीवन में निर्वैरता नहीं आती। यदि विवेक के प्रकाश से देहाभिमान मिट जाय तो सभी दोष मिट जाते हैं और निर्वासना अपने आप आ जाती है, फिर किसी प्रकार का राग शेष नहीं रहता। राग के बिना द्वेष उत्पन्न ही नहीं होता। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि द्वेष मिटाने के लिए राग का मिटाना अनिवार्य है। इस दृष्टि से जहाँ निर्दोषता है, वहाँ निर्वैरता है।

प्रश्न- मुक्ति तथा भक्ति से हमें विमुख किसने किया है?

स्वामीजी- जब हम उन्हें अपना मान लेते हैं जो हमें अपना नहीं मानते, तभी हम मुक्ति तथा भक्ति से विमुख हो जाते हैं।

प्रश्न- सेवा-भाव का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- सेवा-भाव का अर्थ है—सुख-भोग की आसक्ति का त्याग एवं प्राप्त योग्यता तथा वस्तुओं आदि का दुखियों को वितरण कर देना अथवा यों कहो कि संसार से मिली हुई वस्तुओं को संसार को वापिस कर देना।

प्रश्न- हमारी जातीय तथा स्वरूप की एकता किससे है?

स्वामीजी- इस प्रश्न को हल करने के लिये हमें अलौकिक विवेक के प्रकाश में जिससे जातीय तथा स्वरूप की एकता नहीं है, उससे अपने को विमुख करना होगा। स्थूल शरीर से विमुख होते ही अशुभ कर्म की निवृत्ति हो जायगी और शुभ कर्म से उत्पन्न होने वाले सुख की आसक्ति न रहेगी। उसी प्रकार सूक्ष्म शरीर से विमुख होते ही निरर्थक-

चिन्तन मिट जायगाा और सार्थक-चिन्तन अचिन्तता में विलीन हो जायगा। अचिन्तता आते ही कारण शरीर से विमुख होने की शक्ति स्वत: आ जायगी और देहाभिमान अपने आप गल जायगा। फिर जिससे स्वरूप की एकता है उससे अभिन्नता हो जायगी और जिससे जातीय एकता है उसकी प्रीति उदय हो जायगी। स्वरूप की एकता से मुक्ति और प्रीति के उदय से भक्ति स्वत: हो जाती है।

प्रश्न- क्या भक्ति और मुक्ति अलग-अलग हैं?

स्वामीजी- तत्त्व रूप से तो दोनों एक हैं, पर दोनों के रस में भेद है। मुक्ति में अखण्ड-एक रस और भक्ति में अखण्ड-अनन्त रस है। क्योंकि मुक्ति तत्त्व-जिज्ञासा की पूर्ति से और भक्ति प्रीति के उदय से होती है। यह नियम है कि प्रीति का उदय होता है, किन्तु पूर्ति नहीं होती। इस कारण प्रीति का रस अनन्त है, नित-नव है। और, तत्त्व-जिज्ञासा की पूर्ति होती है, इस कारण मुक्ति का रस अखण्ड-एक रस है। पर यह नियम है कि तत्त्व-जिज्ञासा की पूर्ति के बिना प्रीति का उदय ही नहीं होता। अत: यह स्पष्ट हो जाता है कि भोग-इच्छा की निवृत्ति और जिज्ञासा की पूर्ति प्रेम-प्राप्ति के लिए अनिवार्य है।

प्रश्न- रस सुख-भोग में भी होता है क्या?

स्वामीजी- सुख-भोग का रस नीरसता, जड़ता तथा शक्तिहीनता आदि दोषों में बदल जाता है और उसका आरम्भ भी किसी नीरसता तथा अभाव से ही होता है। जिसका प्रारम्भ अभाव, जड़ता तथा पराधीनता से होता है और जिसके अन्त में भी अभाव, जड़ता तथा पराधीनता है केवल मध्य में ही रस की प्रतीति है वह वास्तव में रस नहीं है, रस का भास है। सुख-भोग में रस का भास होता है, यदि वास्तव में रस होता तो सुख-भोग का अन्त नीरसता में न होता।

प्रश्न- हम लोग मुक्त क्यों नहीं हो पाते?

स्वामीजी- मुक्त वही नहीं हो पाते, जो मुक्त होना नहीं चाहते।

प्रश्न- सुख-भोग की लालसा मिटाने का सुगम उपाय क्या है?

स्वामीजी- सुख-भोग की उत्पत्ति कब होती है? यह मानना होगा कि कामना के पूर्तिकाल में ही सुख की प्रतीति होती है। इसके अतिरिक्त सुख की और कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। कामना-पूर्ति का प्रश्न ही तब उत्पन्न होता है जब कामना की उत्पत्ति हो। सभी कामनाओं का जन्म तब होता है, जब हम उससे सम्बन्ध जोड़ लेते हैं जिससे हमारी जातीय तथा स्वरूप की एकता नहीं है अर्थात् भिन्नता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो अपने से भिन्न है, उससे अभिन्नता स्वीकार कर लेने पर कामनाओं की उत्पत्ति होती है। यदि उससे भिन्नता स्वीकार कर ली जाय, तो सभी कामनाएँ स्वतः निवृत्त हो जाती हैं और फिर कामनापूर्ति अर्थात् सुख-भोग का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। इस दृष्टि-कोण से सुख-भोग की लालसा मिटाने का एकमात्र उपाय कामनाओं की निवृत्ति है।

प्रश्न- कामनाओं की निवृत्ति का उपाय क्या है?

स्वामीजी- सभी कामनाओं की उत्पत्ति का कारण अविवेक है। अविवेक की निवृत्ति एक-मात्र विवेक के आदर से हो सकती है।

प्रश्न- सुख के बन्धन से मुक्त कैसे हों?

स्वामीजी- यदि प्राप्त सुख के द्वारा उदारतापूर्वक बिना प्रत्युपकार की आशा के दुखियों की सेवा कर दी जाय, तो हम बहुत ही सुगमतापूर्वक सुख की आसक्ति तथा सुख के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं, एवं जिनको अपना मान लिया था उनके बन्धन से भी मुक्त हो जाते हैं।

प्रश्न- विवेक का आदर करने की सामर्थ्य कैसे प्राप्त हो?

स्वामीजी- विवेक का आदर करने की सामर्थ्य उन्हीं प्राणियों में आती है, जो अपना प्राप्त सुख दुखियों की सेवा में लगा देते हैं और अपने सुख को दुखियों की ही देन मानते हैं। कारण कि अपने से दु:खी को देखकर सभी को सुख प्रतीत होने लगता है। जिसके दर्शनमात्र से हम अपने को सुखी मानने लगते हैं, क्या उसकी सेवा करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है? अर्थात् अवश्य है।

प्रश्न- मुक्ति क्या है और कैसे प्राप्त हो?

स्वामीजी- सुख-भोग की लालसा मिटते ही मुक्ति की अभिलाषा पूर्णरूप से स्वत: जागृत हो जाती है। जिस प्रकार सूर्य का उदय और अन्धकार की निवृत्ति युगपद् है अर्थात् एक साथ हो जाती है, उसी प्रकार मुक्ति की अभिलाषा की पूर्ण जागृति तथा बन्धन की निवृत्ति युगपद् होती है अर्थात् एक साथ हो जाती है। विजातीय से मुक्त होना ही वास्तव में मुक्ति है, क्योंकि भिन्नता उसी से हो सकती है जिससे जातीय तथा स्वरूप की एकता नहीं है। इससे यह सिद्ध हुआ कि अपने में-से विजातीयता का निकल जाना ही मुक्त हो जाना है।

प्रश्न- हममें बुराई का भाव क्यों उत्पन्न होता है?

स्वामीजी- अविवेक के कारण जब हम अपने को देह मान लेते हैं, तब काम की उत्पत्ति होती है। काम की पूर्ति होने से लोभ और मोह तथा काम की पूर्ति में बाधा उत्पन्न होने से क्रोध और द्वेष आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इन दोषों से दूषित होकर हम अपने को दोषी मान बैठते हैं और इस मान्यता से उत्पन्न हुई प्रवृत्ति के द्वारा समाज का अहित करते हैं। यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से सर्वांश में कोई कभी दोषी नहीं होता, क्योंकि दोषयुक्त प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, स्वभावसिद्ध नहीं है। की हुई

दोषयुक्त प्रवृत्ति की स्मृति को प्राणी अपने 'अहम्' में स्थापित कर लेता है, जिससे दूषित प्रवृत्ति बार-बार होने लगती है।

प्रश्न- अभिमान की उत्पत्ति कब और क्यों होती है?

स्वामीजी- अभिमान तब होता है जब अपने को किसी वस्तु, अवस्था एवं परिस्थिति में आबद्ध कर लेते हैं। यह नियम है कि वस्तु आदि में आबद्ध होते ही स्वार्थभाव उत्पन्न होता है। उसके उत्पन्न होते ही अनेक कामनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं और फिर हम अपने से भिन्न की आवश्यकता अनुभव करने लगते हैं अर्थात् पराधीन हो जाते हैं। फिर अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ करने लगते हैं, जो हमें कर्त्ता बना देती हैं। कर्त्ता बनते ही की हुई प्रवृत्तियों के संस्कार दृढ़ होने लगते हैं। उन संस्कारों के समूह से ही अभिमानी हो जाते हैं।

प्रश्न- वास्तविक जीवन क्या है?

स्वामीजी- कर्त्तव्य के समूह का नाम ही कर्त्ता है। कर्त्तव्य उसे कहते हैं कि जिसके पालन करने से साधक निर्दोष हो जाय। निर्दोष होते ही गुणों का अभिमान गल जाता है और फिर कर्त्ता, कर्म तथा उसका फल—ये तीनों अपने लक्ष्य में विलीन हो जाते हैं। अर्थात् इच्छाओं की निवृत्ति हो जाती है और तत्त्व-जिज्ञासा की पूर्ति तथा प्रेम की प्राप्ति हो जाती है, जो वास्तविक जीवन है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्त्तव्यनिष्ठ होने पर कर्त्ता का वास्तविक जीवन से भिन्न कोई अस्तित्व शेष नहीं रहता।

प्रश्न- अभिमान का अन्त एवं अपने वास्तविक स्वरूप से एकता कैसे हो?

स्वामीजी- अभिमान का अन्त करने के लिये यह अनिवार्य हो जाता है कि 'करना' 'होने' में विलीन हो जाय। यह तभी सम्भव होगा

जब साधक अपने अहम्-भाव को उस अनन्त के समर्पण कर अचिन्त तथा अचाह हो जाए। अचाह होते ही 'करना' 'होने' में विलीन हो जाता है और फिर किसी प्रकार का अभिमान शेष नहीं रहता। अभिमान का अन्त होते ही पराधीनता सदा के लिये मिट जाती है और फिर साधक की अपने वास्तविक स्वरूप से एकता हो जाती है।

प्रश्न- दोषों की उत्पत्ति क्यों होती है?

स्वामीजी- जब हम प्रमादवश उन्हें अपना मान लेते हैं जो हमारे नहीं हैं अथवा जब हम उन्हें अपना नहीं मानते जो हमारे हैं, तभी सभी दोष उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न- कौन हमारा है, और कौन हमारा नहीं है?

स्वामीजी- जो हमारे बिना रह सकता है और जिसके बिना हम रह सकते हैं, वह हमारा नहीं है। और जिसके बिना हम नहीं रह सकते और जो हमारे बिना नहीं रह सकता, वही हमारा है।

प्रश्न- अनन्त नित्य चिन्मय जीवन से अभिन्न होने में हमारी सबसे बड़ी असावधानी क्या है?

स्वामीजी- हमारी सबसे बड़ी असावधानी यही होती है कि अवस्था को अपना स्वरूप और प्रतीति को यथार्थ मान लेते हैं, जिससे 'अहम्' और 'मम्' की उत्पत्ति हो जाती है जो अनेक विकारों का मूल है। अवस्था स्वरूप नहीं हो सकती क्योंकि प्रत्येक अवस्था पर-प्रकाश्य है और स्वरूप स्वयं प्रकाश है, तथा प्रतीति यथार्थ नहीं हो सकती क्योंकि वह सतत् परिवर्तनशील है। किन्तु 'अहम्' और 'मम्' के कारण प्रतीति में सत्यता और अवस्था में स्वरूप का अभिमान हो जाता है। यह सब असावधानी का कार्य है, और कुछ नहीं। असावधानी मिटते ही असावधानी का कार्य स्वत:

मिट जाता है और फिर अनन्त-नित्य चिन्मय जीवन से अभिन्नता हो जाती है।

प्रश्न- हम उसे कैसे जानें, जिसकी यह अवस्थामात्र है?

स्वामीजी- जब हम अपने को सभी अवस्थाओं से विमुख कर लेंगे, बस उसी काल में उससे अभिन्न हो जायेंगे जिसकी यह अवस्था है। 'यह' से विमुख होते ही 'मैं' 'वह' से, जो दृश्य से अतीत है, अभिन्न हो जाता है। यह नियम है कि असत् से असङ्ग होने पर असत् की प्रतीति होती है और सत् से अभिन्न होने पर सत् की प्राप्ति होती है। अतः जड़वर्ग से, जो पर-प्रकाश्य है, विमुख होकर ही हम अनन्त-नित्य- चिन्मय तत्त्व से अभिन्न हो सकते हैं।

प्रश्न- राग-द्वेष की उत्पत्ति क्यों होती है?

स्वामीजी- जिससे मानी हुई एकता और जातीय तथा स्वरूप की भिन्नता हो, उसी से राग होता है और किसी एक से राग होने पर ही किसी दूसरे से द्वेष होने लगता है। अथवा यों कहो कि जातीय भिन्नता होने पर भी हम देह को अपना मान लेते हैं तथा 'अपने' को देह मान लेते हैं। इस दृढ़ता से ही राग की उत्पत्ति होती है। इसका जन्म निज-ज्ञान के अनादर से होता है। अर्थात् देह 'मैं' हूँ अथवा देह 'मेरी' है, ऐसी मान्यता ही राग उत्पन्न कर देती है।

प्रश्न- राग के बिना हम अपने प्रियजनों की सेवा कैसे करेंगे?

स्वामीजी- सेवा करने के लिए राग अपेक्षित नहीं हैं, अपितु उदारता की अपेक्षा है। कारण कि उदारता आ जाने पर पराया दुःख अपना दुःख बन जाता है और फिर अपना सुख वितरण करने में लेश-मात्र भी संकोच नहीं रहता। इतना ही नहीं, सुख-भोग की आसक्ति का अन्त हो जाता है। यही सेवा की वास्तविक सार्थकता है। सेवा का अन्त किसी

वस्तु, पद आदि की प्राप्ति में नहीं है। सेवा का अन्त तो त्याग में और त्याग का अन्त प्रेम में होता है।

प्रश्न- जब मानवता एक है, तो फिर मानव-समाज में अनेक मत, दल, सम्प्रदाय आदि की क्या आवश्यकता है?

स्वामीजी- दो व्यक्ति भी सर्वांश में समान योग्यता या रुचि के नहीं होते और न सभी की परिस्थिति में समानता होती है। किन्तु उद्देश्य तथा आवश्यकता सभी की एक होती है। इस कारण साध्य की एकता होने पर भी साधन में भिन्नता होना अनिवार्य है। परन्तु साधन कों ही साध्य मान लेना प्रमाद, अर्थात् अमानवता है। यह नियम है कि अपनी योग्यतानुसार साधन करने पर साधक में स्वतः निर्मलता आ जानी चाहिए, जो उद्देश्य की पूर्ति में समर्थ है। इस दृष्टि से सभी अपनी-अपनी योग्यता, रुचि तथा परिस्थिति के अनुरूप अपनाई हुई पद्धति के द्वारा अपने कर्त्तव्य का पालन कर अपने को निर्मल बनायें, जिससे सभी के उद्देश्य की, जो सबका एक है, पूर्ति सुगमतापूर्वक हो जाय। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न मत, दल तथा सम्प्रदाय होने से कोई क्षति तो तब होती है, जब हम इन्हें अपने को निर्मल बनाने का साधन न मानकर इनकी ऊपरी मान्यताओं में ही सद्भाव करके भेद उत्पन्न कर लेते हैं, जो संघर्ष का मूल है। जैसे, कुछ लोग अर्थ की एकता होने पर भी भाषा का भेद सहन नहीं कर सकते और परस्पर संघर्ष कर अपनी मानवता खो बैठते हैं।

प्रश्न- सुख का अस्तित्व नहीं है, तो हमें शरीरादि वस्तुओं की प्राप्ति से सुख क्यों होता है?

स्वामीजी- शरीर आदि वस्तुएँ संसार रूपी सागर की लहरें मात्र हैं। जब हम समस्त संसार को अपना न मानकर केवल उसके कुछ

अंश-मात्र को अपना मान लेते हैं, तब उस अंश-मात्र के अभिमान को स्वीकार कर सुख का भोग करते हैं। समस्त संसार की कुछ वासनाओं को अपना मान लेना क्या बेईमानी नहीं है? इससे तो यह सिद्ध हुआ कि हम बेईमान होकर सुख भोगते हैं।

प्रश्न- हम समस्त संसार को अपना मान लें, तो क्या सुख न होगा?

स्वामीजी- कदापि नहीं। कारण कि समस्त संसार तो अनेक प्रकार के अभावों, क्लेशों तथा विपत्तियों से निरन्तर पीड़ित है। तो फिर उसको अपना मानकर कौन सुखी हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं। संसार को अपना मानकर तो संसार से मिली हुई वस्तुओं को अपने-से दुखियों को भेट कर सकता है सुख नहीं भोग सकता, जो वास्तव में ईमानदारी है।

प्रश्न- सुख तथा दु:ख के आक्रमणों से क्षुब्ध क्यों होते हैं?

स्वामीजी- अनुकूलता का लालच और प्रतिकूलता का भय ही हमें क्षुब्ध कर देता है।

प्रश्न- जब लालच और भय का मानव-जीवन में कोई स्थान नहीं है, तो ये क्यों उत्पन्न होते हैं?

स्वामीजी- अनुकूलता और प्रतिकूलता का सदुपयोग न करने से लालच तथा भय की उत्पत्ति होती है।

प्रश्न- दु:ख से प्राणी का क्या हित होता है?

स्वामीजी- दु:ख ही सुख की वासना से मुक्त कर अनन्त-चिन्मय आनन्द से अभिन्न करने में समर्थ है। जिस प्रकार धन की आवश्यकता के अतिरिक्त निर्धनता और कुछ नहीं है, उसी प्रकार आनन्द की आवश्यकता के अतिरिक्त दु:ख कुछ नहीं है। आवश्यकता उसे ही

कहते हैं जिसकी निवृत्ति न हो अर्थात् जो मिटाई न जा सके, अपितु उसकी पूर्ति अनिवार्य हो।

प्रश्न- अचाह हम क्यों नहीं हो पाते?

स्वामीजी- आज हमें यह विश्वास नहीं रहा कि वस्तु, अवस्था तथा परिस्थितियों से अतीत भी कोई जीवन है। इस प्रमाद का एकमात्र कारण निज-ज्ञान का अनादर है। क्योंकि सतत परिवर्तनशील, पर-प्रकाश्य वस्तु आदि का ज्ञान सबको है।

प्रश्न- जिसमें सचमुच दोष है, उसके दोष को क्यों न देखें?

स्वामीजी- जिनके आप दोष देखते हैं क्या उनके किये हुए दोष का फल स्वयं भोगने को राजी हैं? क्या कोई पर-दोष-दर्शी दूसरों के किये हुए दोष को अपने द्वारा मिटा सकता है? यदि ये दोनों बातें वह नहीं कर सकता, तो उसे किसी के दोष देखने का क्या अधिकार है? अर्थात् कुछ नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि जिसमें किसी को दोष का दर्शन हो, वह उससे सम्बन्ध-विच्छेद कर सकता है। सम्बन्ध-विच्छेद का अर्थ द्वेष नहीं है, घृणा नहीं है प्रत्युत सम्बन्ध-विच्छेद का अर्थ है उससे विमुख होकर उसे सदा के लिये भूल जाना।

प्रश्न- लक्ष्य क्या है? उसके लिए क्या करें?

स्वामीजी- सतत् परिवर्तन से अनन्त नित्य की ओर और उत्पत्ति-विनाश से अमरत्व की ओर तथा दु:ख से आनन्द की ओर गतिशील होना ही हमारा लक्ष्य है। अत: उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए जो कुछ कर सकते हैं, करना है।

प्रश्न- 'करने' से रहित हो जाने पर हमें क्या मिलता है?

स्वामीजी- 'करने' का जन्म किसी-न-किसी चाह से ही होता है। 'न करना' उन्हीं को प्राप्त होगा जो चाह से रहित हैं और चाह से रहित

वे ही हो सकते हैं जिन्होंने अपने को सब प्रकार से उस अनन्त के समर्पण कर दिया है।

प्रश्न- शिक्षित होने की कसौटी क्या है?

स्वामीजी- ज्ञान-विज्ञान, कला आदि के द्वारा हम अपने को इतना सुन्दर बना लें कि समाज को हमारी आवश्यकता अनुभव होने लगे। यदि ऐसा नहीं हुआ, तो समझना चाहिए कि हम अभी शिक्षित नहीं हैं। यह नियम है कि समाज उसी की आवश्यकता अनुभव करता है जो उसकी आवश्यकता की पूर्ति में समर्थ हो। जिसे अपनी पूर्ति के लिये ही समाज के पीछे दौड़ना पड़ रहा है उसे समझना चाहिए कि अभी उसके जीवन में गुणों का विकास नहीं हुआ।

प्रश्न- प्रेमी तथा तत्त्वज्ञ होने पर मन कहाँ चला जाता है?

स्वामीजी- जब संसार नहीं था, तब जो था अथवा जब संसार नहीं रहेगा, तब भी जो रहेगा और जिसमें संसार है उसी में प्रेमी का मन प्रीति बनकर निवास करता है और तत्त्वज्ञ का मन अभिन्न होकर रहता है। यही मन का अपने पास न रहना व नाश होना है।

प्रश्न- मृत्यु का भय कैसे मिटे?

स्वामीजी- यदि प्राणों के रहते हुए ही भोग-इच्छाओं का अन्त हो जाय और तत्त्व-जिज्ञासा तथा प्रिय लालसा की पूर्ति हो जाय, तो देह की आवश्यकता ही शेष नहीं रहती। अतः मृत्यु का भय स्वतः मिट जाता है।

प्रश्न- जो नित्य-प्राप्त है उससे दूरी क्यों प्रतीत होती है?

स्वामीजी- 'पर' की ओर गतिशील होने से जो नित्य-प्राप्त है उससे दूरी प्रतीत होने लगती है। यद्यपि नित्य-प्राप्त से देश-काल की दूरी सम्भव नहीं है, तथापि प्रमादवश हम उसे अपने से दूर मान लेते हैं

और प्रतीति की ओर गतिशील हो जाते हैं। प्रतीति की ओर प्रवृत्ति तो होती है पर उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रतीति की अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

प्रश्न- योग का वास्तविक अर्थ क्या है?

स्वामीजी- योग का वास्तविक अर्थ है 'पर' से विमुख होकर 'स्व' में स्थित होना, अथवा यों कहो कि विषयों से विमुख होकर जो अपने अत्यन्त निकट है उससे तद्रूप होना। यह नियम है कि अत्यन्त निकट से मिलने के लिए कोई 'करण' अपेक्षित नहीं होता। जिसके लिए कोई 'करण' अपेक्षित नहीं होता, उसके लिए कोई प्रयत्न भी अपेक्षित नहीं होता। जिसके लिए कोई प्रयत्न अपेक्षित नहीं होता, उसकी नित्य-प्राप्ति सिद्ध होती है।

प्रश्न- प्रेम का वास्तविक स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- प्रेम में किसी प्रकार की चाह तथा भोग की सिद्धि नहीं होती, क्योंकि चाह तथा भोग से अहंभाव की पुष्टि होती है। अहंभाव की पुष्टि से भेद उत्पन्न होता है और भेद से ही अनेक प्रकार के राग-द्वेष तथा वासनायें उत्पन्न होती हैं। किन्तु जब विचार की अग्नि अहंभाव को भस्म कर देती है, तब स्वतः प्रेम की गङ्गा लहराने लगती है।

प्रश्न- जगत् का हम पर क्या अधिकार है?

स्वामीजी- जो किसी एक का अधिकार होता है, वही किसी दूसरे का कर्तव्य होता है। अतः जगत् और जगत्पति का अधिकार ही अपना कर्तव्य है। जगत् से प्राप्त संग्रह का सद्व्यय ही जगत् का अधिकार है। इस दृष्टि से शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि वस्तुओं द्वारा हमें जगत् की सेवा करनी है। ज्ञान-विज्ञान तथा कलाओं के रूप में जो भी सौन्दर्य प्राप्त है, उसके द्वारा भी जगत् के अधिकार की रक्षा करनी है; पर उसके

बदले में जगत् से कुछ लेना नहीं है। इतना ही नहीं, यदि बिना ही माँगे जगत् से कुछ मिले तो उसे भी जगत् ही को वापस कर देना है, नहीं तो नवीन राग उत्पन्न हो जाएगा, जो अवनति का मूल है।

प्रश्न- जगत्पति हमसे क्या आशा करते हैं, उनका हम पर क्या अधिकार है?

स्वामीजी- जिनके अंशमात्र में समस्त जगत् विद्यमान है, उन्हें किसी वस्तु आदि की तो अपेक्षा हो ही नहीं सकती। जिनके अनन्त सौन्दर्य से सभी को सौन्दर्य मिला हो, उन्हें किसी परिवर्तनशील सौन्दर्य की आवश्यकता हो ही नहीं सकती। जिनकी सत्ता से ही सभी को सत्ता मिली हो, उन्हें किसी अस्तित्व की तो अपेक्षा है ही नहीं। फिर हम 'उन्हें' क्या दे सकते हैं? केवल यही दे सकते हैं कि, 'हम सदैव तेरे हैं और तुम सदैव मेरे हो।' अर्थात् उनसे नित्य-सम्बन्ध स्वीकार करना ही उनके अधिकार की रक्षा है।

प्रश्न- सार्थक प्रयास क्या है?

स्वामीजी- अनित्य जीवन से निराश होकर अनन्त-नित्य जीवन को वर्तमान में प्राप्त करने का प्रयत्न ही सार्थक प्रयास है।

प्रश्न- अनित्य से निराश क्यों नहीं हो पाते और नित्य को प्राप्त क्यों नहीं कर पाते?

स्वामीजी- इसका एकमात्र कारण है प्राप्त विवेक का अनादर; क्योंकि अनित्य की आशा और अनन्त-नित्य से निराशा अविवेक सिद्ध है। यद्यपि अनित्य सर्वदा उस अनन्त-नित्य में ही निवास करता है, फिर भी उसकी आशा साधक को नित्य से विमुख रखती है। अथवा यों कहो कि अनित्य जीवन नित्य जीवन की ही लालसा है, और कुछ नहीं।

प्रश्न- कामनापूर्ति का जीवन में क्या स्थान है?

स्वामीजी- जिस राग को साधक विचार से न मिटा सके, उसकी वास्तविकता को जानने के लिए उसे विधान के अनुरूप कामनापूर्ति में प्रवृत्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कामनापूर्ति का जीवन में और कोई स्थान नहीं है।

प्रश्न- कार्य के चिन्तन का हेतु क्या है?

स्वामीजी- परिस्थिति के अनुसार किए हुए कार्य का राग ही कार्य के चिन्तन का हेतु है। किये हुए कार्य का राग तभी अङ्कित होता है, जब कर्त्ता कार्य में ही जीवन बुद्धि कर लेता है, अथवा किये हुए कार्य का फल भोगना चाहता है। अर्थात् सुख-भोग की आसक्ति ही कर्त्ता को परिस्थितियों में आबद्ध करती है।

प्रश्न- आसक्तियों का अन्त कैसे हो?

स्वामीजी- वह तभी होगा जब हम उन सबकी सेवा करें जिनका वियोग हो रहा है। वियोग उन्हीं का हो रहा है जिनसे संयोग है। संयोग-काल में ही वियोग का अनुभव करने से भी आसक्तियों का अन्त हो सकता है।

प्रश्न- जिसको 'है' कहते हैं, उसको ही 'मैं' क्यों न कहा जाए?

स्वामीजी- 'मैं' अनेक मान्यताओं के रूप में स्वीकार किया गया है और 'मैं' का अर्थ सीमित रूप में अनेक बार किया गया है, इस कारण 'है' को 'मैं' कहने में प्रमाद हो सकता है। हाँ, यह और बात है कि यदि किसी को 'मैं' के प्रति इतनी ममता हो जाए कि उसको किसी-न-किसी रूप से जीवित ही रखना है, तो भले ही 'है' को 'मैं' के नाम से कह दिया जाए। वास्तव में तो 'मैं' 'है' की प्रीति है, और कुछ नहीं। यद्यपि प्रीति में सत्ता उसी की होती है जिसकी वह है। इस दृष्टि से 'मैं' 'है' की ही अभिव्यक्ति है।

प्रश्न- लक्ष्य का निर्णय कैसे हो?

स्वामीजी- भोग का आरम्भकाल भले ही सुखद प्रतीत हो, पर अन्त में तो भयंकर दु:ख ही प्राप्त होता है। इस अनुभूति का आदर ज्यों-ज्यों स्थाई होता जाता है, त्यों-त्यों लक्ष्य के निर्णय की सामर्थ्य साधक में स्वत: आने लगती है।

प्रश्न- साधन निर्माण कैसे हो?

स्वामीजी- लक्ष्य का निर्णय होते ही साधन का निर्माण होने लगता है, अथवा यों कहो कि साधक का समस्त जीवन अपने आप साधन बन जाता है। भोग के आरम्भ-काल के सुख का भास और परिणाम का भयंकर दु:ख भोग की वास्तविकता का ज्ञान भोग से निराश करने में हेतु है, भोग को जीवन बनाने में नहीं। अत: यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि भोग से योग की ओर गतिशील होने के लिए ही साधन-निर्माण की अपेक्षा है। विभिन्न साधकों के साध्य में एकता हो सकती है साधन में नहीं; कारण कि साधन का जन्म साधकों में-से होता है साध्य में-से नहीं। यह सभी को मान्य होगा कि सर्वांश में दो साधक भी समान योग्यता के नहीं होते। इस कारण साधन का भेद स्वाभाविक है, पर साध्य का नहीं। साधन निर्माण करने के लिए हमें यह भली-भाँति जानना होगा कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। यह नियम है कि जो नहीं करना चाहिए उसके न करने से जो करना चाहिए वह स्वत: होने लगता है।

प्रश्न- इन्द्रियों का ज्ञान बुद्धि के ज्ञान का अनादर कराने में कैसे समर्थ होता है?

स्वामीजी- देह की प्रियता ने ही देह में नित्यता का भास करा दिया है। यद्यपि देह स्वभाव से ही परिवर्तनशील है, परन्तु देह की तद्रूपता

उस देह के परिवर्तन का प्रभाव व्यक्ति पर नहीं होने देती। बस, यही बुद्धि के ज्ञान के अनादर का हेतु है।

प्रश्न- असावधानी क्या परिस्थिति जन्य है?

स्वामीजी- असावधानी परिस्थिति-जन्य नहीं है, अपितु जो कर सकते हैं उसके न करने से अथवा प्राप्त योग्यता के दुरुपयोग से ही असावधानी उत्पन्न होती है। जो साधक का अपना बनाया हुआ दोष है, प्राकृतिक नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि जब साधक अपने बनाए हुए दोष को सहन नहीं कर सकता, तब निर्दोष होने की सामर्थ्य स्वतः आ जाती है अर्थात् असावधानी अपने आप मिट जाती है। यह नियम है कि वही दोष सुरक्षित रहता है जिसे हम सहन करते रहते हैं। अतः असावधानी तभी तक रहती है जब तक हम उसे रखना चाहते हैं। असह्य होते ही असावधानी स्वतः मिट जाती है।

प्रश्न- सुख-लोलुपता का हेतु क्या है?

स्वामीजी- स्वार्थ-भाव ने ही सुख-लोलुपता को जन्म दिया है। स्वार्थ-भाव गलाने के लिए सेवा-भाव को अपना लेना आवश्यक है। सेवा उन्हीं की करनी है, जिनसे छुटकारा पाना है। जिनसे छुटकारा पाना है उनसे ममता नहीं करनी है। कारण कि ममता आसक्ति उत्पन्न करती है, जो बन्धन का हेतु है। अतः जिनसे विमुख होना है उनसे ममता करना भूल है। इस दृष्टि से हमें शरीर आदि सभी वस्तुओं से ममता का त्याग करना होगा। यह नियम है कि जिन वस्तुओं में आसक्ति नहीं रहती उनके सदुपयोग की सामर्थ्य आ जाती है। अतः देह आदि का सदुपयोग करने के लिए भी हमें उनसे ममता का त्याग करना होगा।

प्रश्न- ममता के त्याग का साधक के जीवन में क्या स्थान है?

स्वामीजी- ममता करने मात्र से शरीर का कोई हित नहीं होता और ममता के त्याग से कोई अहित नहीं होता। इतना ही नहीं, ममता किसी वस्तु को सुरक्षित भी नहीं रख सकती। जिस वस्तु का जो स्वभाव है, जो स्वरूप है वह वैसा ही रहेगा। ममता से केवल वस्तु आदि में आसक्ति उत्पन्न होती है और कुछ नहीं। आसक्ति का साधन-युक्त जीवन में कोई स्थान ही नहीं है, अपितु आसक्तिरहित होने से ही साधन में प्रगति सम्भव है। इस दृष्टि से वस्तु आदि में ममता करना भूल है। इस भूल के मिटते ही समस्त जीवन साधन बन जाएगा। समस्त जीवन साधन बन जाने पर सर्वहितकारी प्रवृत्ति तथा वासनारहित सहज निवृत्ति स्वत: आ जाएगी। जिसके आते ही स्वाभाविक लालसा की पूर्ति हो जाएगी, जो साधक का उद्देश्य है।

प्रश्न- अविवेक क्या है?

स्वामीजी- निजज्ञान का अनादर करना ही अविवेक है।

प्रश्न- अविश्वास क्या है?

स्वामीजी- अनेक विश्वासों का होना ही 'अविश्वास' है।

प्रश्न- अकर्त्तव्य क्या है?

स्वामीजी- जिसके करने पर कर्त्ता में करने का राग शेष रहे वही 'अकर्त्तव्य' है।

प्रश्न- विश्वास करने योग्य क्या है?

स्वामीजी- वस्तु आदि के न रहने पर जो रहता है, अथवा जब वस्तुएँ नहीं थीं तब जो था, अथवा वस्तुएँ जिसका आश्रय पाकर प्रकाशित होती हैं--वही विश्वास करने योग्य है। जो विश्वास करने योग्य है उस पर विश्वास करते ही अनेक विश्वास एक विश्वास में विलीन हो जाते हैं।

प्रश्न- शरीर की सेवा का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- जितेन्द्रियता, निर्विकल्पता और समता के द्वारा ही शरीर की पूर्ण सेवा हो सकती है। जितेन्द्रियता के द्वारा शरीर में शुद्धि आती है, मन की निर्विकल्पता के द्वारा सामर्थ्य आती है और बुद्धि की समता के द्वारा शान्ति आती है। शुद्धि, सामर्थ्य और शान्ति आ जाने पर सर्वहितकारी प्रवृत्तियाँ स्वत: होने लगती हैं, जो विश्व की सेवा है। शरीर और वस्तु आदि की ममता तो केवल आसक्ति ही उत्पन्न करती है, उससे न तो शरीर का हित होता है और न समाज का ही। इस दृष्टि से वस्तु आदि के प्रति ममता करने का कोई स्थान ही नहीं है।

प्रश्न- प्रमाद की निवृत्ति कैसे हो?

स्वामीजी- प्रमाद को 'प्रमाद' जान लेने पर उसकी निवृत्ति स्वत: हो जाती है। जिसे 'यह' कहते हैं उसको 'मैं' मान लेना वास्तव में प्रमाद है। 'यह' 'मैं' नहीं है, ऐसा जानते ही प्रमाद मिट जाता है। 'यह' का अर्थ है जो अपने को अपने-आप प्रकाशित न कर सके। इस दृष्टि से समस्त दृश्य इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि 'यह' के अर्थ में आ जाते हैं। अत: जो अपने को बुद्धि आदि से विमुख कर लेता है, उसका प्रमाद स्वत: मिट जाता है। प्रमाद के मिटते ही अहंभाव अनन्त-नित्य-चिन्मय की प्रीति हो जाता है। उसके बाद प्रीति तथा प्रीतम से भिन्न कुछ शेष नहीं रहता।

प्रश्न- प्रेम-प्राप्ति में सुख की आशा बाधक क्यों है?

स्वामीजी- सुख की आशा अहंभाव को पुष्ट और देहाभिमान को उत्पन्न करती है। प्रेम के साम्राज्य में प्रवेश करने के लिए सब प्रकार के अभिमान का अन्त करके अपने आपको मिटाना पड़ता है, क्योंकि प्रेम भेद तथा दूरी सहन नहीं कर सकता। अभिमान रहते हुए भेद मिट नहीं

सकता और अहं के रहते हुए दूरी नहीं मिट सकती। दूरी मिटाने के लिए अहं का अन्त करना होगा और भेद मिटाने के लिए अभिमान रहित होना होगा। यह तभी सम्भव होगा, जब सुख की आशा सदा के लिए मिटा दी जाए। इस दृष्टि से सुख की आशा प्रेम-प्राप्ति में बाधक है।

प्रश्न- 'पर' और 'प्रिय' में क्या भेद है?

स्वामीजी- 'पर' उसे कहते हैं जिसका त्याग स्वाभाविक है, और 'प्रिय' उसे कहते हैं जिससे नित्य-योग स्वाभाविक है। अथवा यों कहो कि 'पर' उसे कहते हैं जिससे जातीय तथा स्वरूप की भिन्नता हो, और 'प्रिय' उसे कहते हैं जिससे जातीय तथा स्वरूप की एकता हो। जिससे एकता है उसकी चर्चा रसरूप होती है, अथवा यों कहो कि रस का उत्पादन करती है।

प्रश्न- परचर्चा भयंकर दोष कैसे है?

स्वामीजी- जिससे जातीय भिन्नता है उसकी चर्चा तो केवल राग-द्वेष में ही आबद्ध करती है। 'राग' पराधीनता को तथा 'द्वेष' क्रोध, ईर्ष्या और हिंसा आदि अनेक दोषों को उत्पन्न करता है। अर्थात् राग-द्वेष के रहेते हुए दिव्य-जीवन प्राप्त नहीं हो सकता, जिसके बिना जीवन की सार्थकता ही सिद्ध नहीं हो सकती। इस दृष्टि से पर-चर्चा बड़ा ही भयंकर दोष है। पर-चर्चा से तो अनेक दोष उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न- पर-सेवा का महत्व क्या है?

स्वामीजी- प्राकृतिक नियमानुसार दूसरों के प्रति जो कुछ किया जाता है वह कई गुना अधिक होकर स्वयं अपने प्रति हो जाता है। इस दृष्टि से दूसरों की सेवा में अपना हित है। सेवा स्वार्थभाव को मिटा देती है, जिसके मिटते ही निष्कामता आ जाती है। उसके आते ही देहाभिमान गल जाता है और फिर बड़ा ही सुगमतापूर्वक अपने ही में अपने वास्तविक

जीवन का अनुभव हो जाता है। इतना ही नहीं सेवा द्वारा भौतिक विकास भी स्वतः होता है। कारण कि सेवा सेवक को विभु बना देती है अर्थात् सेवक समाज के हृदय में निवास करता है; क्योंकि सेवक में निर्वैरता स्वभाव से ही आ जाती है। निर्वैरता के आते ही निर्भयता, समता, मुदिता आदि दिव्य गुण स्वतः आने लगते हैं।

प्रश्न- सेवा का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- सेवा दो प्रकार की होती है—एक बाह्य और एक आन्तरिक। सेवा का अर्थ है—प्राप्त वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य आदि के द्वारा बिना किसी प्रत्युपकार की भावना के सर्वहितकारी कार्य करना। पर यह तभी सम्भव होगा जब हम प्राप्त वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य आदि को अपनी न मानें, अपितु उसी की मानें जिसकी सेवा का सुअवसर मिला है। क्योंकि सृष्टि एक है उसमें भेद करना प्रमाद है।

प्रश्न- कृपया आन्तरिक और बाह्य सेवा का भेद स्पष्ट करें?

स्वामीजी- बाह्य सेवा जिन साधनों से की जाती रही है यद्यपि वे साधन एक ही सृष्टि के हैं और जिनकी सेवा की जा रही है वे भी सृष्टि के ही अन्तर्गत हैं, तो भी जिस प्रकार शरीर के अवयव परस्पर में एक दूसरे की सेवा करते हैं उसी प्रकार सृष्टि से प्राप्त साधनों के द्वारा ही सृष्टि की सेवा की जा सकती है। हाँ, यह अवश्य है कि जब सेवा द्वारा भेद गल जाता है तब 'करना' स्वतः 'होने' में बदल जाता है और आन्तरिक सेवा स्वतः होने लगती है। आन्तरिक सेवा के लिए किसी बाह्य प्रवृत्ति की अपेक्षा नहीं है। उसमें तो सर्वहितकारी भाव विभु होकर सभी को सब कुछ प्रदान करता है, उसके भाव के अनुरूप आवश्यक वस्तु आदि स्वतः प्राप्त होने लगती है। सर्वहितकारी भाव सर्वात्मभाव प्रदान करता है; अर्थात् सभी में सेवक अपने ही को अनुभव करता है।

फिर सेवक, सेवा और सेव्य में अभिन्नता हो जाती है। यही सेवा की पराकाष्ठा है।

प्रश्न- साधन निर्माण में बाधा क्या है?

स्वामीजी- हम अपने जीवन का अध्ययन बिना किए और वर्तमान दशा को बिना जाने साधन करने का प्रयास करते हैं, जो अस्वाभाविक है। इसी कारण न तो साधक को साधन रुचिकर होता है और न साधन के प्रति निस्संदेहता होती है। अरुचि और संदेहयुक्त साधन से सिद्धि सम्भव ही नहीं है। हमें साध्य से निराश नहीं होना है, अपितु साधन का निर्माण करना है। यह तभी सम्भव होगा जब हम 'क्या करें?'- इसको भूल जाएं और जो कर सकते हैं उसे करने लग जाएँ। जो कर सकते हैं उसके करने से राग निवृत्त हो जाता है तथा जो करना चाहिए उसकी योग्यता और सामर्थ्य आ जाती है। जब तक साधक की साध्य से अभिन्नता नहीं होती तब तक सतत रूप से यह क्रम चलता ही रहता है; अर्थात् साधक साधन होकर साध्य की ओर गतिशील होता रहता है।

प्रश्न- निर्बल प्राणी साधन कैसे करें?

स्वामीजी- जो कुछ भी नहीं कर सकता है उससे वह भी तो नहीं हो सकता जो नहीं करना चाहिए! जो नहीं करना चाहिए उसके न करने से जो करना चाहिए वह स्वतः होने लगता है। इस दृष्टि से भी निर्बल-से-निर्बल प्राणी भी साधन कर सकता है। अतः हमसे साधन नहीं हो सकता—यह कहना उसी समय तक सम्भव है जब तक हम साधन नहीं करना चाहते। साधन की रुचि में साधन करने की सामर्थ्य निहित है। अतः साधन न कर सकने की बात कहना अपने-आपको धोखा देना है।

प्रश्न- सुख की दासता तथा दु:ख का भय कब़ तक जीवित रहता है?

स्वामीजी- जब तक हम अपने संकल्पों की पूर्ति चाहते हैं। संकल्पों की पूर्ति कब तक चाहते हैं? जब तक अपने को देह में आबद्ध रखते हैं। देह में आबद्ध कब तक रखते हैं? जब तक सभी मान्यताओं से अतीत के जीवन का अनुभव नहीं कर लेते। कोई भी प्राणी अपने को केवल 'देह' मानकर कभी भी भोग की वासनाओं से रहित नहीं हो सकता, और उसके बिना नि:संकल्पता आ नहीं सकती। नि:संकल्पता के बिना सुख की दासता और दु:ख का भय मिट नहीं सकता।

प्रश्न- विश्राम-प्राप्ति में क्या-क्या विघ्न हैं?

स्वामीजी- जो वर्तमान का कार्य है उसे भविष्य पर छोड़ना और जो वर्तमान का कार्य नहीं है उसका चिन्तन करना अथवा यों कहो कि जो कर सकते हैं उसको न करना और जो करने योग्य नहीं है उसको करना अथवा जिसका होना सम्भव नहीं है उसके करने की सोचना आदि विश्राम में विघ्न हैं।

प्रश्न- वर्तमान में करने योग्य क्या है?

स्वामीजी- शरीर और विश्व की एकता, प्राप्त वस्तुओं की ममता का त्याग एवं उनका सदुपयोग वर्तमान जीवन की वस्तु है। ममता-रहित होते ही सभी बन्धन स्वत: टूट जाते हैं। प्राप्त वस्तुओं का सदुपयोग करते ही सुन्दर समाज का निर्माण होने लगता है। तथा, शरीर और विश्व की एकता सिद्ध होते ही निरभिमानता आ जाती है, जो सब प्रकार के संघर्ष मिटाने में समर्थ है। अत: जो वर्तमान का कार्य है वही करने योग्य है; क्योंकि वर्तमान के सुधार में ही सफलता निहित है।

प्रश्न- न करने योग्य क्या है?

स्वामीजी- जो करने योग्य है उसके विपरीत जो कुछ है वह न करने योग्य है। किसका होना सम्भव नहीं है? जो समय निकल गया उसका हाथ आना सम्भव नहीं है; शरीर आदि वस्तुएँ वर्तमान में जैसी हैं उनका वैसा ही रहना सम्भव नहीं है; व्यक्तित्व का मोह सुरक्षित रहना सम्भव नहीं है और अनन्त से विमुख रहकर शान्ति पाना सम्भव नहीं है। अत: जिसका होना सम्भव ही नहीं है उसके लिए सोचना या चिन्ता करना जीवन का अनादर तथा सामर्थ्य का दुरुपयोग करना है और कुछ नहीं। जो करने योग्य नहीं है उसके न करने से, जो करने योग्य है उसकी योग्यता तथा सामर्थ्य स्वत: आ जाती है। जो नहीं करना चाहिए उसका त्याग जो करना चाहिए उसकी भूमि है। इस दृष्टि से जो करने योग्य है उसके करने में कोई असमर्थ तथा अयोग्य नहीं है।

प्रश्न- जो करने योग्य है उसके करने में जब हम असमर्थ और अयोग्य नहीं हैं, तब हम उसे क्यों नहीं कर पाते?

स्वामीजी- करने की सामर्थ्य तथा योग्यता को उसमें लगा देते हैं जो करने योग्य नहीं है। जैसे, सामर्थ्य तथा योग्यता का बहुत बड़ा भाग हम संसार से सुख लेने की आशा में लगा देते हैं। यद्यपि हमें तो संसार की सेवा करनी है उससे लेना कुछ नहीं; क्योंकि बेचारा संसार स्वयं ही किसी की खोज में है। वह हमें दे ही क्या सकता है? तो भी हम उसके पीछे पड़े हैं, यही प्रमाद है। अत: हमें संसार की धरोहर जो शरीर आदि वस्तुओं के रूप में प्राप्त है, उसे संसार की ही सेवा में लगा देना है और आगे उससे क्षमा माँग लेना है। जब हम संसार की समस्त वस्तुएँ उसी की सेवा में लगा देते हैं, तब हम स्वभाव से ही उसके बन्धन से मुक्त हो जाते हैं और समस्त संसार हम से प्रसन्न हो जाता है; क्योंकि जो उस पर

अधिकार नहीं जमाता संसार उससे सदैव प्रसन्न रहता है। संसार उसी को भय देता है जो उसकी वस्तुओं को अपनी मान लेता है। अत: हमें संसार से कुछ लेना नहीं है अपितु उससे मिली वस्तुओं को उसी को दे देना है और स्वयं विश्राम पा लेना है, जो हमारा साधन है।

प्रश्न- निस्संदेहता प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

स्वामीजी- निस्संदेहता दो प्रकार से प्राप्त होती है—एक तो जिज्ञासा की पूर्ति से और दूसरी विकल्परहित विश्वास द्वारा। जब तक जिज्ञासा की पूर्ति नहीं होती तब तक भी निस्संदेहता नहीं आती और जब तक दो विश्वास रहते हैं तब तक भी निस्संदेहता नहीं आती। संदेह की वेदना जिज्ञासा की जागृति में हेतु है और जिज्ञासा की जागृति कामनाओं की निवृत्ति में हेतु है। कामनाओं की निवृत्ति से जिज्ञासा की पूर्ति हो जाती है; फिर निस्संदेहता स्वत: प्राप्त हो जाती है।

प्रश्न- सभी समस्याओं का हल कैसे हो?

स्वामीजी- 'यह' 'मैं' नहीं है—इसे स्वीकार करते ही 'यह' से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है अर्थात् 'यह' की ममता मिट जाती है, जिसके मिटते ही जीवन ही में मृत्यु का अनुभव हो जाता है। फिर 'मैं' सब ओर से विमुख होकर अपने ही में अपने वास्तविक जीवन को पा लेता है। इस दृष्टि से 'यह' को जानते ही 'मैं' को और 'मैं' को जानते ही वास्तविकता को जानकर साधक निस्संदेह हो जाता है। निस्संदेहता प्राप्त होते ही सभी समस्याएँ स्वत: हल हो जाती हैं।

प्रश्न- 'है' को हम कैसे मान लें, जब कि जानते नहीं हैं?

स्वामीजी- जिसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते हैं उसी को तो मानना है। जानने के पश्चात् तो मानने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। अथवा जिसके सम्बन्ध में कुछ जानते हैं उस पर तो सन्देह हो सकता है,

विश्वास नहीं। विश्वास उसी पर किया जाता है जिसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। वह 'एक' ही विश्वास करने योग्य है। शरीर, वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदि कोई भी जो 'यह' के अर्थ में आते हैं विश्वास करने योग्य नहीं हैं, क्योंकि इन सबसे हमारा नित्य-सम्बन्ध नहीं हो सकता।

प्रश्न- निष्कामता प्राप्त करने के लिए हमें क्या करना चाहिए?

स्वामीजी- हमें प्राप्त परिस्थिति का आदर करना चाहिए, पर उससे ममता और उसमें जीवन-बुद्धि नहीं करनी चाहिए अपितु साधन-बुद्धि रखनी चाहिए। ऐसा करने से बड़ी ही सुगमतापूर्वक परिस्थितियों से अतीत के उस जीवन पर विश्वास हो जाएगा, जो निष्कामता प्रदान करने में समर्थ है।

प्रश्न- उस प्राकृतिक विधान का आदर कैसे करें जो कामना-अपूर्ति के दु:ख में हेतु है?

स्वामीजी- कामना-अपूर्ति का दु:ख कामना-पूर्ति के सुख की दासता से मुक्त करने के लिए आया था, जिसे पाकर हम भयभीत हो गए। यह भूल गए कि कामना-पूर्ति के सुख से अतीत भी एक जीवन है, जो कामना-पूर्ति की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से प्राकृतिक न्याय में हमारा हित ही निहित है। अत: उसका आदर करना अनिवार्य है।

प्रश्न- जब साधन-तत्त्व साधक में विद्यमान है, तब साधक में असाधन उत्पन्न क्यों होता है?

स्वामीजी- निज-ज्ञान के अनादर से। निज-ज्ञान का अनादर होता है बाह्य ज्ञान की आशा तथा विश्वास से। इन्द्रियजन्य ज्ञान बुद्धिजन्य ज्ञान की अपेक्षा बाह्य है और बुद्धिजन्य ज्ञान निज-ज्ञान की अपेक्षा बाह्य है। यदि इन्द्रियजन्य ज्ञान का आदर तथा उस पर विश्वास न किया होता

तो किसी प्रकार के राग की उत्पत्ति ही नहीं हुई होती। यदि राग की उत्पत्ति न होती तो किसी दोष का जन्म ही नहीं होता।

प्रश्न- वर्तमान जीवन का सदुपयोग क्या है?

स्वामीजी- अपने-आप आए हुए सुख-दु:ख का सदुपयोग ही वर्तमान जीवन का सदुपयोग है। सुख का सदुपयोग उदारता में और दु:ख का विरक्त होने में निहित है। उदारता सुख-भोग की आसक्ति को और विरक्ति सुख-भोग की कामना को खा लेती है।

प्रश्न- उदारता का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- उदारता का अर्थ दूसरों के दु:ख से दु:खी होकर प्राप्त सुख का सद्व्यय करना है।

प्रश्न- विरक्ति का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- विरक्ति का अर्थ इन्द्रियों के विषयों से अरुचि का जागृत् होना है।

प्रश्न- शरीर आदि से सम्बन्ध-विच्छेद होने पर क्या वर्तमान कार्य हो सकेगा?

स्वामीजी- सम्बन्ध-विच्छेद होने पर ही कार्य सुन्दरतापूर्वक हो सकता है, क्योंकि सम्बन्ध-विच्छेद होने से अनासक्ति आ जाती है जो सभी दोषों को खा लेती है; अथवा यों कहो कि इससे इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि सभी शुद्ध हो जाते हैं। इनके शुद्ध होने से समस्त व्यवहार पवित्र तथा सुन्दर होने लगते हैं, क्योंकि अशुद्धि ही कर्तव्य में दोष उत्पन्न करती है। शुद्धि तो कर्तव्यनिष्ठ बनाती है। इस दृष्टि से अमरत्व की प्राप्ति तथा वर्तमान जीवन का सदुपयोग, ये दोनों जीवन में ही मृत्यु का अनुभव करने में निहित हैं।

प्रश्न- जीवन में ही मृत्यु का अनुभव कैसे किया जाए?

स्वामीजी- साधक को सर्वप्रथम जीवन और मृत्यु के स्वरूप को जानना होगा। वर्तमान जीवन क्या है? जीवन-शक्ति, प्राण और इच्छाओं का समूह। मृत्यु क्या है? प्राण-शक्ति का व्यय हो जाना और इच्छाओं का शेष रह जाना। जीवन में ही मृत्यु का अनुभव करने के लिए साधक को प्राणों के रहते हुए ही इच्छाओं का अन्त करना होगा। इच्छाओं का अन्त होते ही देहाभिमान गल जाता है। फिर सभी अवस्थाओं से अतीत जो सभी अवस्थाओं का प्रकाशक है, उस स्वयं प्रकाश नित्य-जीवन से अभिन्नता हो जाती है।

प्रश्न- समाज-सेवा के लिए तो जीवन में मृत्यु का अनुभव आवश्यक नहीं है?

स्वामीजी- वास्तविक सेवा के लिए भी जीवन में ही मृत्यु का अनुभव करना होगा, क्योंकि सेवा त्याग की भूमि तथा प्रेम की जननी है। सेवा वही कर सकेगा जो अपने सेव्य के मन की बात पूरी कर सके और उसके बदले में किसी प्रकार की आशा न करे। दूसरे के मन की बात पूरी करने में अपने को मन को दे देना होगा। अत: जीते-जी बिना मरे सेवा की भी सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि अपने पास अपने मन का न रहना ही जीते-जी मरना है। जब तक अपने पास अपना मन रहता है तब तक मृत्यु में जीवन प्रतीत होता है और जब अपने पास अपना मन नहीं रहता तब जीवन में ही मृत्यु का अनुभव होता है।

प्रश्न- अपने पास अपना मन न रहे, इसके लिए साधक को क्या करना होगा?

स्वामीजी- साधक का जिनसे सम्बन्ध है उनके मन में अपना मन मिला देना चाहिए। पर उसी अंश में जिस अंश में उनका हित हो। यदि असमर्थता के कारण साधक दूसरों के मन की बात पूरी न कर सके,

तो उसे नम्रतापूर्वक दु:खी हृदय से क्षमा माँग लेनी चाहिए। ऐसा करने से भी साधक का मन साधक के समीप न रहेगा, क्योंकि किसी के मन की बात पूरी करना अथवा मन की बात पूरी न करने के दु:ख से दु:खी होना समान अर्थ रखता है। अत: योगी, विवेकी, प्रेमी और सेवक होने के लिए जीवन में ही मृत्यु का अनुभव करना है। योग से सामर्थ्य, विवेक से अमरत्व और प्रेम से अगाध-अनन्त रस की उपलब्धि सुगमतापूर्वक हो सकती है, जो वास्तविक जीवन है।

प्रश्न- आस्था क्या है?

स्वामीजी- विश्व का कोई प्रकाशक है, ऐसा मान लेना आस्था है।

प्रश्न- विश्वास क्या है?

स्वामीजी- 'उसका अस्तित्व है', यह मान लेना विश्वास है।

प्रश्न- सम्बन्ध क्या है?

स्वामीजी- 'उससे मेरा नित्य सम्बन्ध है' अर्थात् 'वह मेरा है और मैं उसका हूँ'—ऐसा सर्वदा मानना सम्बन्ध है।

प्रश्न- स्मृति क्या है?

स्वामीजी- 'उसके बिना मैं नहीं रह सकता'-यह स्मृति है।

प्रश्न- प्रीति क्या है?

स्वामीजी- 'उससे मेरी अत्यन्त आत्मीयता है'—ऐसा अनुभव करना प्रीति है। साधन का आरम्भ स्वीकृति (आस्था) से होता है और उसकी परावधि प्रीति में होती है। ऐसा होने पर साधक स्वत: अपने प्रेमास्पद से अभिन्न हो जाता है, क्योंकि प्रीति किसी प्रकार का भेद तथा दूरी नहीं रहने देती। इतना ही नहीं प्रीति प्रेमास्पद को प्रेमी बनाने में भी समर्थ है।

प्रश्न- ममता का उद्गम स्थान क्या है?

स्वामीजी- सीमित अहंभाव जो अविवेक सिद्ध है।

प्रश्न- ममता से लाभ क्या है?

स्वामीजी- ममता प्रियता का भास कराती है।

प्रश्न- ममता से हानि क्या है?

स्वामीजी- ममता सीमित प्यार में आबद्ध करती है जो संघर्ष का मूल है।

प्रश्न- सभी को अपना मान लेने से ममता कैसे मिट जाएगी?

स्वामीजी- जो सभी को अपना मान लेगा वह किसी का बुरा नहीं चाहेगा। यह नियम है कि जो किसी का बुरा नहीं चाहता वह अपने से सुखियों को देखकर प्रसन्न होता है और अपने से दुखियों को देखकर करुणार्द्र होने लगता है। करुणा सुख-भोग की आसक्ति को और प्रसन्नता खिन्नता को खा लेती है। सुख-भोग की आसक्ति तथा खिन्नता के मिटते ही भोग-वासनाओं का अन्त हो जाता है। भोग-वासनाओं के अन्त में ही नित्य-योग निहित है और नित्य-योग में ही वह चिर-शान्ति तथा सामर्थ्य विद्यमान है जिससे ममता और अहंता स्वतः मिट जाती है।

प्रश्न- सभी को अपना मानने में सुगमता है अथवा किसी को अपना न मानने में?

स्वामीजी- सेवा तथा प्यार करने के लिए सभी को अपना मान लो और अपनी पूर्ति के लिए किसी को भी अपना मत मानो। सेवा क्रियात्मक रूप से सीमित और भावरूप से असीम होती है। सेवा का भाव ही वास्तव में प्यार है, अर्थात् क्रिया सीमित होने पर भी प्रीति विभु होनी चाहिए। सभी को अपना मान लेने पर संग्रह की आसक्ति मिट जाती

है, जिसके मिटते ही निर्लोभता आ जाती है। निर्लोभता आते ही प्राप्त वस्तुओं का सदुपयोग होने लगता है और अप्राप्त वस्तुओं की चाह मिटती जाती है। वस्तुओं की चाह मिटते ही जड़ता शेष नहीं रहती और वस्तुओं से अतीत दिव्य-चिन्मय जीवन की लालसा जागृत् होती है, जो अपनी पूर्ति में आप समर्थ है। अपनी पूर्ति के लिए किसी को अपना न मानने से समस्त दृश्य से विमुखता आ जाएगी, जिसके आते ही अनन्त-नित्य चिन्मय जीवन से अभिन्नता हो जाएगी। अतः सेवा करने के लिए सभी अपने हैं और अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए केवल वही अपने हैं जो सभी से अतीत और सभी के प्रकाशक भी हैं, अथवा यों कहो कि जिनसे सभी को सत्ता मिलती है।

प्रश्न- दूसरों का अधिकार क्या है?

स्वामीजी- जो बात हम अपने प्रति दूसरों से नहीं कराना चाहते वह दूसरों के प्रति नहीं करना है, अपितु जो हम दूसरों से आशा करते हैं वही हमें दूसरों के प्रति करना है। प्रत्येक व्यक्ति अपने से जो सबल है उससे रक्षा और प्यार की आशा करता है।

प्रश्न- अध्यात्म विज्ञान का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- अध्यात्म-विज्ञान का अर्थ है 'स्व' का विज्ञान, जो 'पर' से विमुख होने की प्रेरणा देता है।

प्रश्न- 'स्व' का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- 'स्व' का अर्थ है जिससे नित्य-योग हो।

प्रश्न- पर का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- 'पर' का अर्थ है, जिससे वियोग अनिवार्य हो।

प्रश्न- देखने के अभिमानी में देखने की कामना कब से उत्पन्न हुई और क्यों उत्पन्न हुई?

स्वामीजी- प्रवृत्ति स्वभाव से ही निवृत्ति में विलीन होती है। देखने की प्रवृत्ति से कोई ऐसा परिणाम प्राप्त नहीं होता जिसका कोई अस्तित्व हो और प्रवृत्ति के अन्त में अभाव ही शेष रहता है। जिस प्रवृत्ति के परिणाम में अभाव हो एवं प्रवृत्ति-काल में परतन्त्रता हो उसकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। अत: देखने के अभिमानी में देखने की कामना कब से उत्पन्न हुई, इसके लिए किसी काल की कल्पना नहीं की जा सकती। केवल यह कहा जा सकता है कि देखने की प्रवृत्ति का अन्त होता है। इस कारण देखने की प्रवृत्ति की उत्पत्ति सिद्ध होती है, अर्थात् विनाश के आधार पर ही उत्पत्ति की बात कही जाती है।

प्रश्न- देखने आदि की प्रवृत्ति क्यों होती है?

स्वामीजी- देखने की वास्तविकता जानने के लिए अर्थात् प्रवृत्ति की वास्तविकता जानने के लिए ही प्रवृत्ति होती है। प्रवृत्ति की वास्तविकता का ज्ञान होने पर प्रवृत्ति की कामना मिट जाती है, जिसके मिटते ही भोक्ता जिज्ञासु हो जाता है। जिस काल में जिज्ञासा जिज्ञासु को खाकर पूर्ण जागृत् होती है उसी काल में उसकी पूर्ति हो जाती है। जिसके होते ही भोक्ता, भोगने के साधन और भोग्य वस्तुएँ तीनों ही उसी में विलीन हो जाते हैं जो सभी कल्पनाओं से अतीत है।

प्रश्न- सुख-दु:ख क्या है?

स्वामीजी- संकल्प-पूर्ति का ही दूसरा नाम सुख है और संकल्प-उत्पत्ति का ही दूसरा नाम दु:ख है।

प्रश्न- क्या कामना-पूर्ति के लालच का जीवन में कोई स्थान ही नहीं है?

स्वामीजी- कामना-पूर्ति का स्थान भले ही हो पर उसके लालच का कोई स्थान नहीं है। क्योंकि जिन कामनाओं का पूरा होना

अनिवार्य है वे तो स्वभाव से ही पूरी हो जाएगी, पर उनकी पूर्ति का लालच तो नवीन कामनाओं को भी जन्म देगा। अतः वह न तो योग होने देगा, न विचार का उदय होने देगा और न प्रेम का उदय ही होने देगा। इस दृष्टि से कामना-पूर्ति के लालच का साधक के जीवन में कोई स्थान नहीं है।

प्रश्न- क्या कामना-निवृत्ति में जीवन है?

स्वामीजी- कामना-उत्पत्ति से पूर्व और पूर्ति के अन्त में जो जीवन है, वही कामना-निवृत्ति में है। कामना की उत्पत्ति में तो अभाव है और पूर्ति में जड़ता है। वास्तविक जीवन तो कामना-निवृत्ति में ही है। पर इस रहस्य को वे ही जान पाते हैं जो कामना की उत्पत्ति से पूर्व के जीवन का अनुभव कर लेते हैं। बड़ी-से-बड़ी कामना की पूर्ति के पश्चात् साधक उसी स्थिति में आता है जो कामना-उत्पत्ति से पूर्व थी। इससे यह सिद्ध हुआ कि कामना की उत्पत्ति से पूर्व का जीवन स्वाभाविक जीवन है और कामना की उत्पत्ति तथा पूर्ति का जीवन अस्वाभाविक है, अथवा यों कहो कि वह जीवन नहीं मृत्यु है।

कामना-उत्पत्ति और पूर्ति ही उस अनन्त में जगत् का दर्शन कराती है और कामना-निवृत्ति ही उस अनन्त से अभिन्न करती है। कामना की उत्पत्ति और पूर्ति से आसक्ति तथा कामना की निवृत्ति से अनुरक्ति प्राप्त होती है। अथवा यों कहो कि कामना की उत्पत्ति और पूर्ति जगत् की आसक्ति उत्पन्न करती है तथा कामना की निवृत्ति अनन्त की प्रीति जागृत् करती है। आसक्ति का अन्त होते ही जिज्ञासा की पूर्ति और प्रीति की जागृति स्वतः सिद्ध है। प्रीति की जागृति समस्त विश्व में अपने प्रीतम का ही दर्शन कराती है; क्योंकि आसक्ति प्रीतम में जगत् का और प्रीति जगत् में प्रीतम का दर्शन कराती है।

प्रश्न- आस्तिकवाद और नास्तिकवाद का अन्तर क्या है?

स्वामीजी- नास्तिक जिस जगत् को अपनी भोग-सामग्री मानता है आस्तिक उस जगत् को प्रीतम मानकर उसकी पूजा करता है। इस दृष्टि से कामना-उत्पत्ति और पूर्ति का जीवन 'नास्तिक-जीवन' है और कामना-निवृत्ति में 'आस्तिक-जीवन' है। हाँ, आस्तिक-जीवन नास्तिक जीवन का प्रकाशक है, नाशक नहीं। परन्तु आस्तिकता की लालसा नास्तिकता को खाकर आस्तिक बनाने में समर्थ है। वह आस्तिकता की लालसा कामना-निवृत्ति से ही पुष्ट होती है।

प्रश्न- सीमित अहंभाव का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- जिनसे हमारी ममता है उनके अधिकारों का समूह और अपने अधिकार की लालसा ही सीमित अहंभाव है। किसी-न-किसी दृष्टि से सभी के प्रति हमारी ममता है, क्योंकि देह की ममता में ही सभी की ममताएँ निहित हैं और देह का विश्व से विभाजन हो नहीं सकता। अत: सभी के प्रति ममता स्वत: सिद्ध है।

प्रश्न- हम उस अनन्त की तो प्रीति होना चाहते हैं पर इस भौतिक जगत् की, जिसमें अनेक दोष दिखाई देते हैं, प्रीति कैसे हो सकते हैं?

स्वामीजी- जब प्रीति से अभिन्नता हो जाती है तब समस्त भौतिक जगत् उस अनन्त की ही अभिव्यक्ति प्रतीत होता है, उसके बाद यह प्रश्न शेष नहीं रहता कि हम किसकी प्रीति हैं। प्रीति तो सभी की प्रीति है। पर यह अवश्य है कि वह किसी परिस्थिति आदि में आबद्ध नहीं है, सीमित नहीं है, विनाशी नहीं है; नित-नव है, दिव्य है, चिन्मय है और उसकी दृष्टि में प्रीतम से भिन्न कुछ नहीं है। क्योंकि प्रेम के साम्राज्य में प्रेमास्पद से भिन्न कुछ हुआ ही नहीं।

प्रश्न- हम बुराई को बुराई जानते हुए भी उसका त्याग क्यों नहीं कर पाते?

स्वामीजी- इन्द्रिय-ज्ञान में और बुद्धि के ज्ञान में जो द्वन्द्व है, उसी के कारण हम बुराई को बुराई जानकर भी उसका त्याग नहीं कर पाते। जिस काल में बुद्धि का ज्ञान इन्द्रियों के ज्ञान पर विजयी हो जाता है, उसी काल में द्वन्द्व मिट जाता है। उसके मिटते ही बुराई का त्याग स्वत: हो जाता है और भलाई अपने आप होने लगती है, क्योंकि बुराई को तो किया जाता है और भलाई स्वत: होती है।

प्रश्न- साधना का क्रम क्या होना चाहिए?

स्वामीजी- सेवा करते हुए त्याग का सम्पादन करना चाहिए और त्याग को प्रेम में बदलने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहि। यह तभी सम्भव होगा जब सेवा करने पर न तो सेवा का अभिमान हो और न सेवक कहलाने की रुचि ही। निरभिमानतापूर्वक की हुई सेवा स्वत: त्याग में बदल जाती है। त्याग का फल चिर-शान्ति और अमरत्व की प्राप्ति है। जब साधक शान्ति के रस में आबद्ध नहीं होता, तब त्याग प्रेम में बदल जाता है। सेवा, त्याग और प्रेम के साथ अहंभाव नहीं रहना चाहिए। ऐसा होने पर सेवा त्याग में और त्याग प्रेम में स्वत: विलीन हो जाता है अर्थात् सेवा, त्याग और प्रेम तो हो पर सेवक, त्यागी और प्रेमी न हो। अथवा यों कहो कि सेवक 'सेवा' होकर त्यागी 'त्याग' होकर और प्रेमी 'प्रेम' होकर प्रेमास्पदों से अभिन्न हो जाए। यही वास्तविक जीवन है।

प्रश्न- गुण और दोष के द्वन्द्व का अन्त कैसे हो?

स्वामीजी- गुण और दोष के स्वरूप को जान लेने पर ही द्वन्द्व का अन्त हो सकता है। सभी को सुख देने के प्रयास को गुण कहते हैं।

किन्तु केवल एक ही शरीर को सुखी रखने का प्रयास किया जाए तो वह दोष हो जाता है। इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि गुण को सीमित कर देना दोष हो जाता है। जिस प्रकार प्रकाश की न्यूनता ही अन्धकार है अन्धकार का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार गुण की न्यूनता ही दोष है दोष का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। यदि दोष का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व होता तो वह मिट ही नहीं सकता था। मिटाना उसी को है जो मिट सकता है; और मिट वही सकता है जिसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व न हो अपितु जो किसी कारण से प्रतीत होता हो। ज्ञान की न्यूनता 'अज्ञान', प्रेम की न्यूनता 'द्वेष', त्याग की न्यूनता 'राग' और उदारता की न्यूनता 'लोभ' है। यद्यपि गुण और दोष अनेक नहीं हैं, परन्तु एक ही गुण स्थान-भेद से अनेक गुणों के रूप में और एक ही दोष स्थान-भेद से अनेक दोषों के रूप में प्रतीत होता है।

प्रश्न- मौलिक गुण और दोष क्या हैं?

स्वामीजी- सभी दोष अविवेक में और सभी गुण विवेक में विद्यमान हैं। अतः गुण और दोष का द्वन्द्व मिटाने के लिए विवेक रूपी प्रकाश के द्वारा अविवेकरूपी अन्धकार का अन्त करना अनिवार्य है।

प्रश्न- अविवेक क्या है?

स्वामीजी- अविवेक केवल विवेक का अनादर है, उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। इस कारण विवेक के आदर में ही अविवेक का विनाश है। जिस प्रकार प्रकाश होने पर अन्धकार का दर्शन नहीं होता, उसी प्रकार विवेक का आदर करने पर सीमित अहंभाव रूपी अन्धकार, जो अविवेक है, स्वतः मिट जाता है। उसके मिटते ही समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि जिस भूमि में दोष निवास करते थे वह भूमि ही शेष नहीं रहती।

प्रश्न- विवेक का आदर क्या है?

स्वामीजी- 'यह' को 'मैं' न मानना ही विवेक का आदर है, जिसके करते ही सीमित अहंभाव मिट जाता है। जिस प्रकार सूर्य का उदय और अन्धकार की निवृत्ति युगपत् है, उसी प्रकार विवेक का आदर और अविवेक की निवृत्ति युगपत् है। 'यह' को 'मैं' न मानने पर सभी दोष मिट जाते हैं, जिनके मिटते ही स्वतः दिव्य गुण प्रकाशित होते हैं। क्योंकि 'यह' को 'मैं' न मानने से कामनाओं का अन्त हो जाता है और कामनाओं की निवृत्ति में ही जिज्ञासा की पूर्ति निहित है। कामनाओं की निवृत्ति और जिज्ञासा की पूर्ति होते ही सीमित अहंभाव-जैसी कोई वस्तु शेष ही नहीं रहती; क्योंकि सभी कामनाओं का उद्गम स्थान जो 'यह' को 'मैं' मानना था वह शेष नहीं रहा।

प्रश्न- कामना-रहित होने पर क्या जिज्ञासा के आधार पर सीमित अहं नहीं रह सकता?

स्वामीजी- कदापि नहीं! क्योंकि जिज्ञासा उसी की होती है जिससे देश-काल की दूरी नहीं है और जो उत्पत्ति-विनाशयुक्त नहीं है। जिससे देश-काल की दूरी नहीं है और जो अविनाशी है उसकी जिज्ञासा उसी में विलीन हो जाती है, यह प्राकृतिक विधान है। अतः कामनाओं की निवृत्ति और जिज्ञासा की पूर्ति होने पर सीमित अहं का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। यह नियम है कि सीमित अहं के मिटते ही 'मम' मिट जाता है तथा 'अहं' और 'मम' के नाश होते ही सीमित प्रीति अर्थात् सब प्रकार की आसक्तियाँ मिट जाती हैं, जिनके मिटते ही सभी दोष मिट जाते हैं। फिर गुण और दोष का द्वन्द्व नहीं रहता। कामनाओं की निवृत्ति में चिर-शान्ति और सामर्थ्य, जिज्ञासा की पूर्ति में अमरत्व और समस्त आसक्तियों की निवृत्ति में दिव्य-चिन्मय प्रीति निहित है।

प्रश्न- प्रीति किसका फल है?

स्वामीजी- प्रीति किसी का फल नहीं है, अपितु अनन्त का स्वभाव है। क्योंकि कर्म का फल नित्य नहीं हो सकता और प्रीति नित्य-तत्त्व है। अभ्यास अनन्त नहीं हो सकता, श्रमरहित नहीं हो सकता, अहंरहित नहीं हो सकता। परन्तु प्रीति श्रमरहित है, अहंरहित है, अनन्त है, और दिव्य चिन्मय है। इस दृष्टि से प्रीति की सिद्धि न किसी कर्म का फल है और न अभ्यास का।

प्रश्न- हम सभी को अपना क्यों नहीं मानते हैं?

स्वामीजी- सुख-भोग की आसक्ति के कारण हम सभी को अपना नहीं मान पाते, क्योंकि काम ही भेद को उत्पन्न करता है जो अविवेकसिद्ध है।

प्रश्न- किसी एक को ही अपना मानने की प्रेरणा कहाँ से मिलती है?

स्वामीजी- समस्त विश्व की पर-प्रकाश्यता एवं इसके सतत परिवर्तन का ज्ञान किसी स्वयं प्रकाश एवं अपरिवर्तनशील की लालसा जागृत करता है। उसी लालसा के आधार पर किसी 'एक' को अपना मानने की प्रेरणा मिलती है। अथवा यों कहो कि प्रेम का आदान-प्रदान करने के लिए किसी एक नित्य साथी की आवश्यकता स्वाभाविक है, उसके आधार पर भी किसी 'एक' का होकर रहने की प्रेरणा मिलती है।

प्रश्न- स्वत: क्या होना चाहिए?

स्वामीजी- योग, ज्ञान और प्रेम—ये तीनों स्वत: होने चाहिए; क्योंकि इनके लिए किसी वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदि की अपेक्षा नहीं है। वस्तु की चाह लोभ उत्पन्न करती है, अवस्था की चाह जड़ता

उत्पन्न करती है और किसी परिस्थिति की चाह सीमित बनाती है अथवा यों कहो कि मोह में आबद्ध करती है। परन्तु जिसकी प्राप्ति के लिए किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है, उस की प्राप्ति तो स्वाभाविक होनी चाहिए! इस दृष्टि से योग, ज्ञान और प्रेम वर्तमान की वस्तुएँ हैं और स्वभावसिद्ध हैं। जो स्वभावसिद्ध हैं उनके लिए हम अस्वाभाविक साधनों को अपनाते हैं, यही प्रमाद हैं।

प्रश्न- क्या जीवन में श्रम तथा अरुचि का कोई स्थान ही नहीं है?

स्वामीजी- श्रम का स्थान आलस्य मिटाने में है, प्रिय के पाने में नहीं। अरुचि का स्थान सुख-भोग के त्याग में है, प्रीति के उदय में नहीं। इतना ही नहीं, अरुचि ही वास्तव में अनेक रुचियों को जन्म देती है और श्रम ही आलस्य को उत्पन्न करता है। पर यह रहस्य तब समझ में आता है जब देह का अभिमान गल जाए।

प्रश्न- अरुचि ने अनेक रुचियों को जन्म कैसे दिया?

स्वामीजी- अरुचि प्रतिकूलता से उत्पन्न होती है और प्रतिकूलता कामना की अपूर्ति में प्रतीत होती है। कामना की उत्पत्ति मिथ्या अभिमान से होती है। कामना-पूर्ति के लिए ही अनेक प्रकार की रुचियाँ उत्पन्न होती हैं और रुचि-पूर्ति के लिए ही श्रम अपेक्षित होता है। इस दृष्टि से यह सिद्ध हुआ कि कामना-अपूर्ति के दुःख ने अरुचि को उत्पन्न किया और कामना-पूर्ति के लालच ने अनेक रुचियों को जन्म दिया।

प्रश्न- रुचि तो राग उत्पन्न कर देगी?

स्वामीजी- राग तो सुख-भोग से उत्पन्न होता है, जो रुचि-अरुचि के द्वन्द्व से सिद्ध है। केवल रुचि तो अनुराग उत्पन्न कर देगी, राग नहीं।

अनुराग विभु है और राग वस्तु, व्यक्ति आदि में आबद्ध है। अत: अरुचि से रहित जो रुचि है वह राग उत्पन्न नहीं कर सकती, अपितु प्रीति जागृत् करती है।

प्रश्न- क्या सब ओर से विमुख होने पर ही हम सत्य से अभिन्न हो सकते हैं?

स्वामीजी- जो सत्य सब ओर से विमुख होने पर प्राप्त होता है वही सभी के सम्मुख होने से भी मिल सकता है; अर्थात् जिसकी उपलब्धि त्याग से होती है उसी की प्रेम से भी होती है। त्याग विमुखता का पाठ पढ़ाता है और प्रेम सम्मुखता का। जब तक किसी और की स्वीकृति है तब तक त्याग साधन है, और जब कोई और है ही नहीं तब प्रेम ही साधन है और प्रेम ही साध्य है। अथवा यों कहो कि त्यागरूपी भूमि में ही प्रेमरूपी-वृक्ष उत्पन्न होता है, अर्थात् त्याग का फल ही प्रेम है।

प्रश्न- दृष्टियों में-से सर्वप्रथम किस दृष्टि का उपयोग करना चाहिए?

स्वामीजी- निर्दोषता आने पर ही प्रीति का उदय होता है और अमरत्व से अभिन्नता होती है। इस कारण सर्वप्रथम विवेक-दृष्टि का उपयोग करना अनिवार्य है।

प्रश्न- समस्त दृश्य से विमुखता प्राप्त करने के लिए क्या करना होगा?

स्वामीजी- दृश्य के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होने पर ही दृश्य से विमुखता सम्भव है।

प्रश्न- यदि दृश्य नहीं है तो प्रतीत क्यों होता है?

स्वामीजी- दृश्य की प्रतीति इन्द्रिय-ज्ञान तथा बुद्धि-ज्ञान से तद्रूप होने पर होती है। ये दोनों भी दृश्य ही हैं। इसलिए यह सिद्ध हुआ

कि दृश्य से तद्रूप होने पर ही दृश्य की प्रतीत होती है। दृश्य से तद्रूपता निज-ज्ञान के अनादर से है, वास्तविक नहीं। निज-ज्ञान का आदर करने पर दृश्य से तद्रूपता नहीं रहती। तद्रूपता के मिटते ही दृश्य की प्रतीति स्वतः मिट जाती है, जिसके मिटते ही नित्य-योग प्राप्त हो जाता है। नित्य-योग में चिर-शान्ति और सामर्थ्य विद्यमान है।

प्रश्न- वर्तमान कार्य क्या है?

स्वामीजी- प्राप्त परिस्थिति का सदुपयोग, जाने हुए दोष का त्याग, जिसे प्राप्त करना हो उसका विश्वास, उससे नित्य-सम्बन्ध और जिससे छुटकारा पाना है उसकी ममता का त्याग वर्तमान का कार्य है।

प्रश्न- वर्तमान क्षणभंगुर जीवन का सदुपयोग क्या है?

स्वामीजी- क्षणभंगुर जीवन का सदुपयोग है 'सर्व हितकारी प्रवृत्ति'। सर्व हितकारी प्रवृत्तियाँ स्वार्थभाव को खा लेती हैं, स्वार्थभाव के मिटते ही सुख-भोग की आसक्ति शेष नहीं रहती और समस्त विश्व के साथ एकता का ज्ञान हो जाता है। जिसके होते ही मोह का नाश और प्रेम का प्रादुर्भाव हो जाता है। निर्मोहता में वास्तविक ज्ञान और प्रेम में अगाध-अनन्त रस निहित है।

प्रश्न- सर्व हितकारी प्रवृत्ति क्या है?

स्वामीजी- जिसमें किसी का अहित न हो, जिसका उदय करुणा तथा प्रसन्नता से हो और जिसके अन्त में अभिन्नता प्राप्त हो, वही सर्व-हितकारी प्रविृत्त है। अभिन्नता आते ही कर्तृत्व का अभिमान गल जाता है और वासनाओं का अन्त हो जाता है। वासनाओं का अन्त होते ही सीमित अहंभाव शेष नहीं रहता। जिसके मिटते ही नित्य-योग, नित्य-जीवन और प्रेम प्राप्त होता है।

प्रश्न- वर्तमान जीवन का वास्तविक स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- वर्तमान व्यक्तिगत जीवन का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है; क्योंकि समष्टि शक्तियों के आधार पर ही व्यक्तिगत चेष्टाएँ होती हैं। जैसे सूर्य के आधार पर ही नेत्र की चेष्टा होती है। इस दृष्टि से समस्त विश्व और व्यक्तिगत जीवन के स्वरूप में कोई भेद नहीं है। अत: जो समस्त विश्व का प्रकाशक है, वही व्यक्तिगत जीवन का भी है।

प्रश्न- भोग की रुचि का अन्त कैसे हो?

स्वामीजी- भोग की वास्तविकता का ज्ञान भोग की रुचि का अन्त कराने में समर्थ है। प्रत्येक भोग-कामना की पूर्ति के अन्त में भोगी पुन: उसी स्थिति में आता है, जिसमें भोग-कामना की उत्पत्ति से पूर्व था। कामना के उत्पत्ति काल का अभाव तथा दु:ख, प्रवृत्ति-काल का श्रम तथा सुख और पूर्तिकाल की शक्तिहीनता तथा जड़ता—इनके ज्ञान से यह प्रेरणा मिलती है कि भोग-कामना की उत्पत्ति, प्रवृत्ति और पूर्ति से किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती, केवल श्रम का दुर्व्यय और अभाव की उपलब्धि होती है। यदि भोग-कामना की उत्पत्ति से पूर्व के जीवन पर दृढ़ आस्था हो जाए, तो बड़ी ही सुगमतापूर्वक भोग की रुचि का अन्त हो सकता है।

प्रश्न- असत् के सदुपयोग का वास्तविक अर्थ क्या है?

स्वामीजी- प्राप्त सामर्थ्य, योग्यता तथा वस्तुओं के द्वारा विश्व की सेवा ही असत् का सर्वोत्कृष्ट उपयोग है। यह नियम है कि जो वस्तु सेवा में लग जाती है उससे ममता नहीं रहती और जिसकी सेवा की जाती है उसमें सौन्दर्य आ जाता है। अत: शरीर आदि वस्तुओं के द्वारा विश्व की सेवा करने से विश्व में सौन्दर्य आ जाएगा और शरीर आदि वस्तुओं की ममता मिट जाएगी। जिसके मिटते ही सत् की वह अभिलाषा स्वत: जागृत् होगी जो सत् से अभिन्न करने में हेतु है।

प्रश्न- सीमित अहं का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी- सीमित अहं का स्वरूप है—करने की रुचि, पाने का लालच और जीने की आशा। करने की रुचि का उपयोग आलस्य रहित तथा लालचरहित होकर दूसरों के अधिकार की रक्षा में है; और जीने की आशा का उपयोग अमर होने में है। पर ऐसा न करके हम अपने अधिकार को सुरक्षित रखने के लिए श्रम का, दूसरों के अधिकार की रक्षा में आलस्य का एवं सुख-भोग के लिए जीने की आशा का उपयोग करते हैं। जिसके परिणाम केवल अनेक प्रकार के भय, शोक और मृत्यु आदि हैं।

प्रश्न- 'यह' को 'यह' जानने का अर्थ क्या है?

स्वामीजी- इन्द्रियों की दृष्टि से समस्त विश्व का अर्थ 'यह' है, बुद्धि की दृष्टि से मन का अर्थ 'यह' है और अन्तर्दृष्टि से बुद्धि का अर्थ भी 'यह' है। इस प्रकार इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि समस्त दृश्य से विमुख होना है, जिसके होते ही अन्तर्दृष्टि स्वयं अनन्त से अभिन्न कर देगी। फिर सीमित अहंभाव-जैसी कोई वस्तु शेष नहीं रहेगी।

प्रश्न- बाह्य दृष्टि का सदुपयोग क्या है?

स्वामीजी- बाह्य दृष्टि का सदुपयोग करने के लिए सर्वप्रथम स्वार्थभाव का अन्त करना होगा। उसके होते ही प्रत्येक प्रवृत्ति सेवा-भाव से स्वत: होने लगेगी। यह नियम है कि सेवा-भाव से की हुई प्रवृत्ति हृदय में अनुराग जागृत् करती है और उस प्रवृत्ति के अन्त में स्वभाव से ही वह सहज निवृत्ति आ जाती है, जिसके आते ही चिर-शान्ति अथवा मधुर स्मृति स्वत: होने लगती है। चिर-शान्ति से नित्य-योग तथा मधुर स्मृति से प्रिय से भिन्न की विस्मृति स्वत: होने लगती है। फिर बाह्य दृष्टि स्वत: अन्तर्दृष्टि में विलीन हो जाती है।

प्रश्न- अधिकार-लालसा की उत्पत्ति क्यों होती है?

स्वामीजी- जब तक प्राणी अपने अस्तित्व को किसी की भी उदारता पर जीवित रखता है तब तक अधिकार-लोलुपता उत्पन्न होती रहती है। यद्यपि जिस अस्तित्व की सिद्धि किसी अन्य पर निर्भर है वह वास्तव में अस्तित्व ही नहीं है। परन्तु प्रमादवश प्राणी उसे अस्तित्व मान लेता है। वास्तव में तो वह केवल दूसरों के अधिकारों का समूह है और कुछ नहीं। जिन्हें हमने अपना मान लिया है अथवा जिन्होंने हमें अपना मान लिया है उनके अधिकार की रक्षा और अपने अधिकार का त्याग करने पर वह अस्तित्व, जो अधिकार-लालसा पर जीवित था, मिट जाता है। उसके मिटते ही चिर-शान्ति से अभिन्नता स्वतः हो जाती है। इस दृष्टि से क्रियाशीलतापूर्वक दूसरों के अधिकार की रक्षा करने तक ही अपना अधिकार है। किसी से अधिकार माँगने का साधक के जीवन में कोई स्थान ही नहीं है।

प्रश्न- दूसरों के अधिकार की रक्षा में यदि हम अपने को असमर्थ पाएं, तब साधन का निर्माण कैसे होगा?

स्वामीजी- ऐसी दशा में किसी का अहित न चाहना ही साधन हो जाता है। साधक के जीवन में किसी के अहित करने तथा चाहने का कोई स्थान ही नहीं है। असमर्थता में किसी का अहित तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि अहित करने के लिए भी तो सामर्थ्य अपेक्षित है! समर्थ दशा में सर्वहितकारी चेष्टाओं से जो शुद्धि आती है, वही शुद्धि असमर्थता में किसी का अहित न चाहने से आ जाती है। इस दृष्टि से असमर्थता साधन-निर्माण में बाधक नहीं है। साधन-निर्माण में बाधक तो एकमात्र सामर्थ्य का दुरुपयोग ही है, और कुछ नहीं।

★

★ मानव सेवा संघ के प्रकाशन ★

1.	सन्त समागम भाग-1	25/-
2.	सन्त समागम भाग-2	25/-
3.	सन्त समागम भाग-3	15/-
4.	सन्त वाणी भाग-1 (सफलता की कुंजी)	15/-
5.	सन्त वाणी भाग-2	25/-
6.	सन्त वाणी भाग-3	15/-
7.	सन्त वाणी भाग-4	15/-
8.	सन्त वाणी भाग-5 (क)	15/-
9.	सन्त वाणी भाग-5 (ख)	15/-
10.	सन्त वाणी भाग-6	20/-
11.	सन्त वाणी भाग-7	20/-
12.	सन्त वाणी भाग-8	25/-
13.	प्रश्नोत्तरी (सन्त वाणी)	20/-
14.	सन्त सौरभ (सन्त वाणी)	25/-
15.	सन्त उद्‌बोधन	25/-
16.	प्रेरणा पथ	25/-
17.	संत पत्रावली भाग-1	20/-
18.	संत पत्रावली भाग-2	20/-
19.	संत पत्रावली भाग-3	15/-
20.	जीवन दर्शन भाग-1	25/-
21.	जीवन दर्शन भाग-2	15/-
22.	चित्त शुद्धि भाग-1	20/-
23.	चित्त शुद्धि भाग-2	25/-
24.	जीवन पथ	15/-
25.	मानव की माँग	20/-
26.	मानव दर्शन	25/-
27.	मूक सत्संग और नित्य योग	
28.	मानवता के मूल सिद्धांत	
29.	सत्संग और साधन	

30.	साधन तत्त्व	10/-
31.	साधन त्रिवेणी	20/-
32.	दर्शन और नीति	15/-
33.	दुःख का प्रभाव	15/-
34.	मंगलमय विधान	15/-
35.	जीवन विवेचन भाग-1 (क)	20/-
36.	जीवन विवेचन भाग-1 (ख)	20/-
37.	जीवन विवेचन भाग-2	30/-
38.	जीवन विवेचन भाग-3	30/-
39.	जीवन विवेचन भाग-4	30/-
40.	जीवन विवेचन भाग-5	30/-
41.	**A Saint's call to Mankind**	50/-
42.	**Sadhna-Spotlight by a saint**	40/-
43.	सन्त जीवन दर्पण	20/-
44.	मानव सेवा संघ का परिचय	15/-
45.	साधन निधि	10/-
46.	पाथेय भाग-1	10/-
47.	पाथेय भाग-2	10/-
48.	पथ प्रदीप	10/-
49.	प्रार्थना तथा पद	5/-
50.	मैं की खोज	5/-
51.	जीवन विवेचन भाग-6 (क)	25/-
52.	जीवन विवेचन भाग-6 (ख)	25/-
53.	जीवन विवेचन भाग-7 (क)	20/-
54.	जीवन विवेचन भाग-7 (ख)	25/-
55.	**Ascent Triconfluent**	35/-
56.	क्रान्तिकारी सन्तवाणी	50/-
57.	सन्त हृदयोद्गार	8/-

ता : मानव सेवा संघ, वृन्दावन-281121 (मथुरा)
फोन : (0565) 2442778

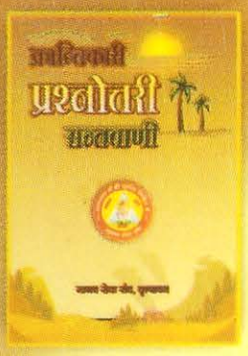

मानवता के मूल सिद्धान्त

1. आत्म-निरीक्षण अर्थात् प्राप्त विवेक के प्रकाश में अपने दोषों को देखना।

2. की हुई भूल को पुनः न दोहराने का व्रत लेकर सरल विश्वासपूर्वक प्रार्थना करना।

3. विचार का प्रयोग अपने पर और विश्वास का दूसरों पर अर्थात् न्याय अपने पर और प्रेम तथा क्षमा अन्य पर।

4. जितेन्द्रियता, सेवा, भगवत् चिन्तन और सत्य की खोज द्वारा अपना निर्माण।

5. दूसरों के कर्त्तव्य को अपना अधिकार, दूसरों की उदारता को अपना गुण और दूसरों की निर्बलता को अपना बल न मानना।

6. पारिवारिक तथा जातीय सम्बंध न होते हुए भी पारिवारिक भावना के अनुरूप ही पारस्परिक सम्बोधन तथा सद्भाव अर्थात् कर्म की भिन्नता होने पर भी स्नेह की एकता।

7. निकटवर्ती जन-समाज की यथाशक्ति, क्रियात्मक रूप से सेवा करना।

8. शारीरिक हित की दृष्टि से आहार- विहार में संयम तथा दैनिक कार्यों में स्वावलम्बन।

9. शरीर श्रमी, मन संयमी, बुद्धि विवेकवती, हृदय अनुरागी तथा अहं को अभिमान शून्य करके अपने को सुन्दर बनाना।

10. सिक्के से वस्तु, वस्तु से व्यक्ति, व्यक्ति से विवेक तथा विवेक से सत्य को अधिक महत्व देना।

11. व्यर्थ-चिन्तन त्याग तथा वर्तमान के सदुपयोग द्वारा भविष्य को उज्जवल बनाना।